RNI No- 65373/94

चन्द्रताल

अंक 29, जनवरी 2014 - मार्च 2016

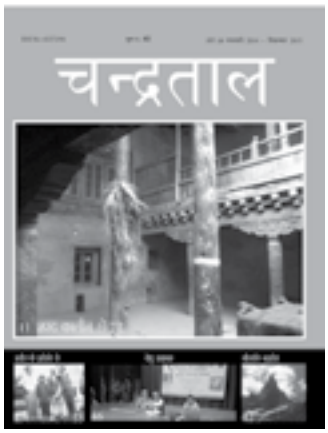

आवरण : मुखौटा नृत्य कक्ष, खडसर
छायाचित्र : ठिनले नमग्याल शास्त्री

संस्थापक :
स्वंगला एरतोग,
लाहुल स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु
सोसाईटी रजि० संख्या ल स 42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21,1860

संपादक :
डॉ. छिमे शाशनी

उप संपादक :
बलदेव कृष्ण घरसंगी

प्रकाशक :
सतीश कुमार

डिज़ाईन/ले आऊट :
किशन बोक्टपा

संपर्क :
उप संपादक,
151/1 रामशिला,
अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू, हि०प्र० 175101
9816019157 / 9459774779
editor.chandrataal@gmail.com

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा डिजिटल एक्सप्रेस, मनाली से मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू, हि०प्र० से प्रकाशित। संपादक, डॉ. छिमे शाशनी।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक।

चन्द्रताल सहयोग राशि :
एक प्रति - रु० 40
वार्षिक - रू 150

इस अंक में:

सम्पादकीय		: 2
पाठकीय		: 3
कसौटी		: 4
कविताएं :		
पहाड़	: यूसुफ	: 5
ओस की बूंद	: शेर सिंह	: 5
चंचल मन अस्थिर मन	: टशी अंगरूप	: 6
वो सूनी आंखें	: रेखा	: 7
लाहुली माताएं	: शेर सिंह मेरुपा	: 8
यारां सौगी बहारा	: कंचन ठाकुर	: 8
क्षेत्रीय दृष्टि :		
लाहुली विवाह-एक विहंगम दृष्टि	: सतीश कुमार लोप्पा	: 9
आवरण कथा :		
शरद कालीन छोद्पा	: ठिनले नमग्याल शास्त्री	: 11
श्रद्धांजलि		
ठाकुर शिव चन्द जी नहीं रहे	: सतीश कुमार लोप्पा	: 16
इतिहास प्रसंग		
लाहुल-स्पीति अतीत के झरोखे से	: स्व. शिव चन्द ठाकुर	: 18
कहानी :		
बन्द कमरों वाला मकान	: प्रो. संतोष शर्मा	: 22
लोकगाथा :		
कैता माया राम	: स्व० के. अंगरूप लाहुली	: 27
भाषा :		
भोटी भाषा	: एम. आर. ठाकुर	: 29
धर्म :		
हीनयान और महायान में मौलिक भेद	: डॉ. टशी पलजोर	: 33
देव परम्परा :		
भीम प्रेयसी हिड़िम्बा	: तेज राम नेगी	: 36
समाज :		
लाहुल में महिलाओं की स्थिति	: सुनीता कटोच	: 40
कानून :		
शरीर, मस्तिष्क और उत्साह से चूर	: डॉ. राजेश कुमार	: 48
स्वास्थ्य :		
केलंग में मेडिकल अनुसंधान केन्द्र	: डॉ.जे.पी.नारायण	: 50
विविध :		
सोच सदा सकारात्मक	: नवङ तन्ज़िन कटोच	: 42
नीलकंठ महादेव	: विकास ओथङ्बा	: 44
लाहुल के पूर्व व अब की संस्कृति	: नवङ उपासक	: 46
दुख का नहीं, आनन्द का..	: सीताराम गुप्ता	: 51
रिपोर्ट :		
स्वाँगला पिति वेणु समागम	: ञगः छेरिङ	: 53
प्रकाशन :	: बलदेव घरसंगी	: 55
समीक्षा :		
मन देश है तन परदेस	: डॉ. उरसेम लता	: 56

सम्पादकीय

आज कल अक्सर चर्चा होती है वृद्धाश्रम के अवधारणा की और समय की मांग कह कर सभी इस अवधारणा के पक्ष में लगते हैं। मन में प्रश्न उठता है क्या हम इतने असंवेदनशील हो गए हैं, जो हमें वृद्धाश्रम के लिए सोचने पर विवश कर रही है, विदेशों और महानगरों में प्रचलित वृद्धाश्रम की अवधारणा हमारा ध्यान अपनी ओर खींच रही है और हम भी इसकी अनिवार्यता को स्वीकारने लगे हैं। जिस भारतीय समाज में बुजुर्गों का परिवार में होना वरदान समझा जाता था, वही परिवार के लिए आदर्श होते थे, जिन की अनुपस्थिति खालीपन का एहसास कराता था, आज वे ही त्याज्य हो रहे हैं। आज अधिकतर वृद्ध उपेक्षित जीवन जीने के लिए विवश हैं। आखिर क्यों? क्या हमारा समाज संस्कार विहीन होता जा रहा है या स्वार्थपरता ने इतना आत्मकेंद्रित बना दिया है कि आज परिवर्तन की परिभाषा ही बदल दी गई, जहां वृद्धों के लिए कोई जगह ही नहीं बची, उन्हें बोझ समझा जाने लगा। किसी ने ठीक ही कहा है-

छत-छत नहीं रहती, दीवार दीवार नहीं रहती।
घर-घर नहीं रहता, जिस घर में बुजुर्ग नहीं रहता।।

पर आज यह भावना धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। जिन वृद्धों ने कष्ट सहकर पालन-पोषण किया, शिक्षित किया, वृद्धावस्था में बोझ समझ कर उनसे मुख मोड़ना या पैसे देकर वृद्धाश्रम में रखना कहां तक उचित है? अगर ध्यान से देखें अल्पायु बच्चे और वृद्धों की स्थिति कुछ मायनों में एक जैसी होती है, अपना काम करने में अशक्त, पराश्रित, लाचार। विडम्बना देखिए जिन के लिए अपने जीवन की आहुति दी, आज वही बच्चे बड़े होकर उनको प्रताड़ित करते हैं, उनसे छुटकारा चाहते हैं। इन्सान की मनोवृत्ति कब कैसे बदल जाए कहा नहीं जा सकता। यहां सवाल उठना लाज़िमी है कि कोई तो कारण रहे होंगे जिन के चलते हम इस स्थिति को स्वीकारने लगे हैं। सोचने विचारने के बाद कुछ स्थितियां इस तरह स्पष्ट होने लगती हैं। समय तेज़ी से बदल रहा है। पीढ़ियों में सोच का अन्तर बढ़ रहा है। पुरानी पीढ़ी ने बहुत कुछ बदलते देखा पर वह अतीत के मोह में पूरी तरह नए बदलते समय में स्वयं को फिट नहीं पाता और नई पीढ़ी ने उनसे बहुत अलग वातावरण में जीवन जीना शुरू किया। नई पीढ़ी केवल आज को देखना चाहती है पुरानी पीढ़ी अतीत के मोह में ग्रस्त दिखती है जिसके चलते पीढ़ियों में टकराव की स्थिति पैदा हो रही है। संभवतः यही कारण है कि महानगरों के वृद्धाश्रम नई पीढ़ी को आकर्षित करने लगे हैं।

हमारा मानना है कि इस अवधारणा को लेकर बीच का रास्ता निकालने की आवश्यकता है। ज़मीनी हकीकत से इन्कार नहीं किया जा सकता। दोनों पीढ़ियां एक-दूसरे की ज़रूरत को समझें और एक भारतीय परम्परा कायम रहे उसके लिए, बुजुर्गों को घर से दूर आश्रमों में भेजने की बजाए अपने-अपने क्षेत्र, चाहे शहर हो या गांव में ऐसे सामुदायिक भवन बनाया जाए, जहां हम उम्र वृद्ध दिन के समय इकट्ठे होकर अपने रुचि के अनुसार क्रिया कलाप कर सकें, अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान कर बिना कटुता के समरसता का जीवन जी सकें, जहां अकेलापन, असुरक्षा की भावना मनमें पनपे ही न और परिवार वाले भी अपने ढंग से काम करने के लिए स्वतंत्रता का अनुभव कर सकें। आप यदि ऐसी व्यवस्था करते हैं तब यह एक तरह से परम्परा की नींव होगी और सब के लिए मानसिक क्लेश से ग्रस्त होने की सम्भावना भी कम होगी ।

अन्त में मुझे यह कहने में संकोच नहीं कि वृद्धाश्रम की अवधारणा को हम पूरी तरह नकार भी नहीं सकते। यह आश्रम उन लोगों के लिए वरदान है जिन का अपना कहने वाला कोई नहीं या अपनी स्वार्थ पूर्ति के बाद जिन्हें अपरिचितों या पराये की श्रेणी में रख दिया जाता है।

वृद्धाश्रम को ले कर जो सुगबुगाहट आज हमारे पहाड़ी क्षेत्रों में चल रही है उसे स्वीकार करने या न करने में मतभेद होना स्वभाविक है। इसलिए आज मुझे इस विषय पर बहस/परिचर्चा की ज़रूरत महसूस होती है:-

- पहला सवाल तो यही कि ये अवधारणा हमारे क्षेत्र में क्यों कर प्रवेश कर रही है?
- वृद्धाश्रम क्यों होने चाहिए या क्यों नहीं होने चाहिए?
- मैदानों में जो वृद्धाश्रम अस्तित्व में हैं उन के अनुभव कैसे रहे हैं?
- क्या घर और वृद्धाश्रम के बीच और अवधारणा खोजी जा सकती है; जो हमारे सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा भी कर सके और नए मूल्य का निर्माण भी कर सके?

सम्पादक

चन्द्रताल के प्रकाशन में आए अन्तराल को लेकर पाठक वर्ग में एक निराशा सी छा गई थी परन्तु नया अंक हाथ में आते ही एक नई उमंग पाठकों में दौड़ गई। चन्द्रताल के सम्पादक मण्डल को उनके इस प्रयास के लिए बधाई देती हूँ। विश्वास है कि आप इसी उत्साह और आत्मविश्वास के साथ अपने दायित्व का निर्वहन करते रहेंगे।

आज युग बदल गया है कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि साधनों ने मुद्रित पत्रिकाओं का महत्व कम कर दिया है। ऐसे में जिस मनोयोग से आप सब इस कार्य में जुटे हैं वह सचमुच सराहनीय है।

चन्द्रताल जहाँ एक ओर पहाड़ी लोकगीतों के माध्यम से वहाँ के जन-जीवन, लोक परम्पराओं, लोक विश्वासों से पाठक का परिचय कराता है वहीं दूसरी ओर शोध परक निबंधों के माध्यम से वहाँ की संस्कृति, परिस्थिति और आर्थिक व्यवस्था से भी पाठक को परिचित कराता है। लाहुल के पारम्परिक, सांस्कृतिक रीति-रिवाज़ों, त्योहारों के साथ ही वहाँ के भौगोलिक परिवेश एवं प्राकृतिक सौन्दर्य का भी विस्तृत परिचय प्रस्तुत करता है। साथ ही वहाँ के जनमानस में बसे पौराणिक विश्वासों से भी परिचित कराने का सराहनीय प्रयास किया गया है।

'दो धाराओं में बहता लाहुली समाज' में प्रबुद्ध लेखक ने प्रगति की अंधी-दौड़ में लुप्त होती परम्पराओं के कारण उत्पन्न टीस और त्रासदी को रेखांकित करने का प्रयास किया है। बारिश की बूंदें आदि कविताएँ पहाड़ी जन-जीवन की विषमताओं और विवशताओं से रूबरु कराती हैं। कहीं वृद्धावस्था की बेबसी को शब्दों में बांधने का प्रयास किया है। कहीं कटते पेड़ों के दर्द को वाणी प्रदान की है। सूखते ग्लेशियर के माध्यम से समाज को आने वाली प्राकृतिक आपदाओं एवं चुनौतियों से सावधान कर लेखक ने समाज के प्रति अपने मानवीय दायित्व का निर्वहन किया है।

इसी प्रकार चन्द्रताल अपने पाठकों का ज्ञान वर्धन करता है। लाहुल के साथ बृहत्तर हिमाचल के परिवेश को भी इसमें सम्मिलित कर सकें तो इस का फ़लक और भी विस्तृत हो जाएगा।

अगले अंक के लिए मंगल कामनाएं।

प्रो. (श्रीमती) संतोष शर्मा,
चण्डीगढ़।

निःसंदेह पत्रिका के प्रकाशन में न चाहते हुए भी तनिक सी विलम्ब अवश्य हो रही है पर जब पत्रिका का अंक प्रकाशित होकर विभिन्न बहुमूल्य सामग्री के साथ पाठकों के पास पहुँच जाता है तो सर्वप्रथम ध्यान सम्पादकीय की ओर स्वतः ही चला जाता है। उत्सुकता इस बात को जानने की कि पत्रिका के इस नए अंक में सम्पादक महोदया ने पत्रिका में वर्णित महत्त्वपूर्ण बातों को किस तरह अपनी सम्पादकीय ढंग से प्रस्तुत करने का सद्प्रयास किया है। सौभाग्यवश अंक 28 (अक्तूबर 2011 दिसम्बर 2013) आवरण, लोक गाथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, सिकुड़ते ज़रिम तथा मोक्ष का मार्ग है विपश्यना भी पढ़ने का सुअवसर मिला। गर्व महसूस हुआ, मन को सूकून मिला, अद्भुत आनन्द की अनूभूति हुई यह जान कर हर्ष का विषय है कि पाठक समय-समय पर अपनी सृजनात्मक तथा परिपक्व वैचारिकता से प्रभावित एवम् प्रेरित होकर पत्रिका के सफल प्रकाशन में हर संभव योगदान देते आ रहे हैं। इस सद्प्रयास में कोई शिथिलता न आए, कोई ठहराव न आए बल्कि इस प्रयास में सदैव प्रयासरत रहें, इस की बुद्धिजीवियों एवम् सक्रिय पाठकों से अपेक्षा की जाती है। निःसंदेह सच्चा विश्वास व्यर्थ नहीं जाता है इसी विश्वास को मन में लिए पत्रिका के अगले अंक की प्रतीक्षा में।

टशी अंगरूप गड़फा,
खोपनी, ज़िला कुल्लू।

चन्द्रताल पत्रिका का अंक प्राप्त हुआ। आपने इस पत्रिका को इतने लम्बे समय से लेकर चलाए रखा है। यह बड़ी खुशी की बात है। आप को बड़ी बधाई। वर्तमान अंक विषय की विविधता से भी विशिष्ट है।

एम० आर० ठाकुर,
देव प्रस्थ भवन, ढालपुर कुल्लू, हि० प्र०।

वर्तमान लाहुली मानसिकता में अपने चिन्हों, प्रतीकों, क्रिया कलापों, माँ बोली, रीति रिवाज़ों, और रचनाओं को कमतर आंकने की प्रवृत्ति

बलदेव कृष्ण घरसंगी

लाहुली समाज पूर्व में अपने सीमित साधनों व वस्तु-विनिमय अवस्थाओं (barter syetem) में विचरण करते हुए जीवन यापन आर्थिकी के बोझ तले अपने चिन्हों,प्रतीकों, रीति-रिवाज़ों, क्रिया कलापों और रचनाओं को जीवन यापन से जोड़ कर देखता आया है। पूर्व में हमारी संस्कृति का मानक जीवन यापन ही रहा है। तब समाज में उपरोक्त सभी कार्य एक विहित व्यवस्था में समाहित होकर पनप रहे थे। इस काल में आर्थिक बोझ के होते हुए भी समाज ने गृह निर्माण, हथकरघा, हस्तशिल्प और सृजन में काफी महारत हासिल कर ली थी या फिर प्रयासरत था। मोरावियन मिशनरीज़ से खेती, गृह निर्माण, आधुनिक चूल्हा, हस्तशिल्प की गुणवत्ता को समझते हुए उसे अपनाया। इस समय पारम्परिक संगीत और धार्मिक रागों की सम्पदा अपने चरम सीमा पर थी तथा सुगिलि व घुरे के माध्यम से मौखिक परम्परा भी उन्नत हो चली थी।

भारत वर्ष की स्वतन्त्रता के बाद पूरे देश की तरह लाहुल में भी परिवर्तन का बयार चलने लगा। लाहुलियों में शिक्षा के प्रति समर्पित भाव उपजना शुरू होने लगा। उन्हें यह आभास होने लगा कि शिक्षा ही उन्हें इस तंगहाल हालात से बाहर निकाल सकती है और यह सोच सच भी था। इसके उपरान्त साठ के दशक में लाहुल जीवन यापन आर्थिकी से बाहर निकल कर कृषि आर्थिकी में प्रवेश कर गया। इसके साथ ही लाहुली मानसिकता में भी बदलाव आना शुरू हो गया। शिक्षा व रोज़गार हेतु वे बाहर निकलने लगे और उनका टकराव बाहरी समाज से शुरू हो गया। हमारे बहुत से क्रिया कलाप व मूल्य उनसे मेल नहीं खाते थे। इस प्रकार का असमंजस अभी व्यापक स्तर पर उभर कर नहीं आया था परन्तु अस्सी के दशक के बाद जब लाहुल ने कृषि आर्थिकी से बाहर निकल बाज़ार व्यवस्था में प्रवेश किया तो अधिकतर लाहुली शिक्षा, व्यवसाय, खेती और जीवन यापन के लिए लाहुल से कुल्लू आने लगे। इस तरह उनका सम्पर्क उन्नत समाज के साथ होने लगा। क्योंकि अब हम अपने परिवेश से बाहर आकर एक प्रवासी की तरह अपने से उन्नत समाज के सम्पर्क में थे और उनके मूल्यों व मानकों से हमारी अवस्था मेल नहीं खाती थी तो अब हमें अपने कुछ चिन्ह, प्रतीक, रीति-रिवाज़ अखरने लगे। लाहुल में शिक्षा के आगमन के साथ पूर्व से चले आ रहे बहुत से प्रतीकों जैसे योर, चुमेक्चि, फोरोग, सुगिलि और कई विधाओं को पहले ही अनावश्यक समझ कर त्याग दिया था। इस प्रकार आधुनिकता का ठोर पकड़ कर उच्चतर समाज में निहित आधुनिक परिवेश में अपने आप को समाहित करने की दौड़ में शामिल हो गया। इसी बीच अपनी मेहनत व इच्छाशक्ति से समाज कब उपभोक्ता बाज़ार में प्रवेश कर गया पता ही नहीं चला। इस तरह उसकी अपनी भाषा, प्रतीक, चिन्ह, रीति-रिवाज़ और क्रिया कलापों के खोने की प्रक्रिया को और गति मिलने लगी।

वर्तमान में अब हमारी मानसिकता विगत में पनपी अपनी सारी विधाओं को नकारना ही रह गया है। अब इन्हें अनावश्यक व रूढ़ीवादी माना जा रहा है। परन्तु इनके बदले में जो हम अपना रहे हैं उसे विकासोन्मुख माना जा रहा है। अब तो होड़ लगी है कि कैसे पुराने मानकों को दरकिनार कर उच्चतर समाज के चिन्हों व प्रतीकों को अपना कर कैसे सामाजिक तौर पर अपने वजूद को स्थापित करें। हम में अब अपने पूर्व काल की सभी विधाओं को कमतर आंकने की होड़ सी लग गई है और विरासत में हम अपने आने वाली पीढ़ी को उच्चतर समाजों के कुत्सित ढकोसलों को परोसते जा रहे हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? क्या हमारे विगत के सभी मानक अनावश्यक थे? क्यों आज लाहुली शिक्षित समाज अपने चिन्हों, प्रतीकों, रीति-रिवाज़ों को कमतर आंकना अपनी प्रवृत्ति व स्वाभाव बना रहा है। यह एक ऐसा विषय है जिस पर आज हमें चिन्तन करने की आवश्यकता है। हम आधुनिक होने के चक्कर में अत्याधुनिक होते जा रहे हैं और इस नए अवतार में समाहित होने के लिए अपने समाज के विगत की सभी विधाओं को कमतर आंकना हमने अपनी प्रवृत्ति बना ली है। लाहुली राग जो सदियों से समाज में परिष्कृत था, उसे हमने आधुनिक मानकों के निमित्त त्याग दिया है। अपने प्रतीकों को आधुनिक उच्चतर समाज में समाहित करने हेतु हमने एक बहुत ही परिष्कृत वंश परम्परा को त्याग दिया है। इसी प्रकार हम एक-एक करके सभी मौखिक परम्पराओं को खोते जा रहे हैं। आज हम एमीनम, प्रसूनजोशी और हनी सिंह के लिखे गीत तो समझ जाते हैं लेकिन अपनी भाषा के गीतों में हम रूपकों को उस स्तर पर देखने की बजाय उनके प्रारूपों पर ही प्रश्न चिन्ह लगा देते हैं। जबकि हम 'बीड़ी' जलाई ले जिगर से पिया ''पर ठुमकते हैं तो'' शुरबुट कोङश्री अपा ''पर सवालिया निशान लगा देते हैं कि अच्छा शुरबुट छना कोङश्री?'' आज हमें अपने विगत के सभी मानक, चिन्ह और प्रतीक अखरने व अनावश्यक लगने लगे हैं।क्यों? क्या हम सचमुच आधुनिक हो गए हैं? अगर आज हमें ''सोनम तरज्ञे'' द्वारा दी जाने वाली सहूलियतों से वंचित किया जाता है तो हमारा विकास दर, खासकर नौकरी पेशों में ऐसी ही रहेगी जो आज है? अगर ऐसा नहीं है तो फिर किस बात का घमंड। आज जब हम अज्ञानता वश या फिर अहंकार वश आधुनिक उपभोक्ता व्यवस्था के दल-दल में फंस कर जीवंत समाज होने का दिखावा कर रहे हैं तो क्या यह हमारा दोगलापन नहीं है?

नित्शै कहते हैं: परिणामतः अदृश्य निकाय के सत्ता की चाह के सक्षम प्रचारक के तौर पर हम स्वयं को कायम रखने में प्रकृत्यः, अवश्यम्भावी ह्रास को निर्धारित करते हैं। वह जीवन को "प्रभावों का आधार" मानते हैं और परिणामतः "जीवन के ह्रास" को "सगंठन की शक्ति में ह्रास" के साथ समीकृत करते हैं।

इसी प्रकार आज हमारा समाज उपभोक्ता बाज़ार के निमित्त संगठित तो हो जाता है परन्तु ''जीवन जीने की इच्छाशक्ति'' व मानव मूल्यों के क्षरण होने से पूर्वजों द्वारा स्थापित मूल्यों, चिन्हों, प्रतीकों को संगठित करने में असमर्थ होने से वह इसे त्यागने में ही अपना हित समझने लगता है। आज पुरातन समाज के सभी प्रतीकों को धीरे-धीरे त्यागना उसकी मजबूरी हो गई है। इन सबके प्रभाव से वह आत्मिक रूप से इतना कमज़ोर हो गया है कि उसे वे सभी प्रयत्न अपने खिलाफ लगते हैं जो इसे पुर्नस्थापित करना चाहते हैं। वह इस आत्मग्लानि के बोध से अनभिज्ञ समाज में एक नपुंसक व्यवस्था की कामना करते हैं ताकि उनकी असफलता, उत्तरोत्तर सृजन की अक्षमता उनकी आत्मा की अथाह गहराईयों में जो चीत्कार भर रहा है वह किसी को सुनाई न दे। सदियों से चली आ रही परंपराएं अपने आप में अनुचित व समाज की व्यवस्था से अनभिज्ञ नहीं होतीं। यह हमारे पूर्वजों के तप और त्याग की धरोहर हैं और जीवंत समाज के दर्पण। आज इसे हम अनावश्यक मान कर त्याग नहीं सकते क्योंकि पूर्वजों के धरोहर और स्थापित मूल्य ही हमारी पूंजी हैं और इन्हें सभालना हमारा कर्त्तव्य। अगर आज हम इस दुरूह कार्य को करने से चूकते हैं तो हमारे समाज का ह्रास निश्चित एवं अवश्यम्भावी है। ■

शेर सिंह

ओस की बूंद

ओस की बूंद
मुस्करा पड़ती है
खिलखिला उठती है
सूरज की
पहली किरण के
प्रथम स्पर्श से
यह जान कर भी
कि-
अभी कुछ ही
पल में, उसे
हो जाना है, विलीन
शून्य में।
तब केवल
शेष रह जाएंगी
फूलों को
स्मृतियां, ओस की
और, फिर शुरू होगा
इंतज़ार, फूलों को
रात की
बिछलती चांदनी में
चमकती, शीतल ओस के
जीवंत और सुखद
स्पर्श की
अनुभूति का।

खोपनी, ज़िला कुल्लू।

पहाड़

यूसुफ

पहाड़
सुनना तुम
पहाड़ गूंगे नहीं हैं
बोल पड़ेंगे एक दिन
उन सब के नाम
जो गये थे कभी
श्वेत हंसों के पीछे.....
और लौटे थे
शिखरों पर
प्रार्थना ध्वज फहरा कर
सब के हिस्से की खुशहाली लिए.....
उतना अनाज.....
कि देवों को भोग लगा सकें.....
उतनी सी नमी.....
कि सपनों के बीज अंकुरित हों.....!
देखना तुम.....
पहाड़ अपाहिज भी नहीं हैं
उतर आएंगे एक दिन
अपनी नींदों से जाग कर
तेरे मखमली सपनों में
खोल देंगे बांध तुम्हारे भीतर का
बह जाओ तुम संग प्रवाह में
सब को साथ लिए
कि जीवन तो हलचल में है.....!
देखना तुम
इन्हीं पहाड़ों की भीतरी गुफाओं में
धुंधला गए हैं निशान
उन की सोच के
यह मृत नहीं
जीवन अभी बाकी है.....
खड़े हो जाओ इन पहाड़ों की तरह
कि गिर के अपनी ही नज़रों से
उठना कठिन है.....!
देखना तुम.....
पहाड़ कमज़ोर नहीं है
हर विस्फोट के बाद
नीलम के खानों से लेकर
न्योज़े के जंगलों तक
रावी के मुहाने से लेकर
सिंधु के छोर तक
फिर खड़े हो जायेंगे पहाड़
हवाओं का रुख मोड़ने.....
मौसम का मिज़ाज़ बदलते
देर नहीं लगती.....!
देखना तुम
पहाड़ कुछ नहीं रखते अपने लिए
छोड़ देंगे अपना सब कुछ
नियत भी.....
ज़िद भी.....
सोच भी तुम्हारे लिये.....
कि उन्हीं चट्टानों पर अभी
फसलें उगानी है तुमको.....!
महसूसना तुम
कोई सोच भीतर
पहाड़ बन कर उभरा हो
कभी
टूटते चट्टानों का शोर
बेचैन करता है
भीतर जैसे
टूट रहा हो कोई सेतु
जिस ने जोड़ रखा था अब तक
पहाड़ को पहाड़ से
या कभी साईबर कैफे में
बिटिया का प्रोजेक्ट पूरा करते-करते
अचानक मिल गया हो पहाड़
लहूलुहान
और पूछा हो तुम से पता
उन परिन्दों का जो
लौटते नहीं हैं अब पहाड़ों पर.....
और शाम घर लौटते हुए
अपने ही गलियों में रोज़
खुद को गुमशुदा पाते हो.....
बेझिझक
लौट के आना
काठ के सन्दूक के भीतर
तेरे बचपन की ऊनी टोपी में
"पहाड़" की
वसीयत लपेट कर रख दी है.....!

अधिकारी, यूको बैंक, शिमला।

चंचल मन अस्थिर मन

टशी अंगरूप

चंचलता, अस्थिरता मन की
टिकाऊ नहीं मन कहीं भी
कभी इधर कभी उधर
बस अस्थिरता ही अस्थिरता
टिकाऊ नहीं मन कहीं भी
सकारात्मक और नकारात्मक विचार
लहरों की तरह मन में उठना
और फिर समा जाना जीवन रूपी सागर में
जीवन जो नश्वर एवम् क्षणभंगुर है
आता नहीं यह मानव जीवन बारम्बार
जीवन, मानव जीवन बहुमूल्य है
ईश्वर की अद्‌भुत रचना है यह
अनुपम भेंट है यह ईश्वर की
पर आता नहीं यह बारम्बार
चंचल मन अस्थिर मन
चंचलता एवम् अस्थिरता का ताना-बाना
टिकाऊ नहीं मन इस ताने बाने में
कभी प्रसन्न और कभी निराश
कभी खुशी और कभी गम
खुशी और गम का ताना-बाना
टिकाऊ नहीं मन इस ताने-बाने में
बस सिर्फ चंचलता और अस्थिरता
ताना-बाना सकारात्मक एवम् नकारात्मक विचारों का
अस्थिर एवम् चंचल मन
टिकाऊ नहीं मन इस ताने-बाने में
मन में अच्छे, बुरे विचार
निकल जाती है बात मुँह से
तोला नहीं, परखा नहीं
बस निकाल दी मुँह से
जैसे तीर कमान से
कर दी वार हर किसी पर
कर दी चोट हर किसी पर
आखिर क्यों और कैसे
निकल गई बात मुँह से
बिना सोचे बिना विचारे
बिना चिन्तन, बिना मनन के
सोचो, तोलो, बोलो
न बोलो यह ले
बस तोलो पहले
पर तोलने से पहले
सोचना, विचारना ज़रूर
मन में अच्छे विचार लाना ज़रूर
फिर तोल कर बोलना अच्छी वाणी
अच्छी वाणी का अपना महत्त्व
नहीं पहुँचाता चोट किसी को
भर देती है याद मरहम की तरह
बोले भी वे वाणी इंसान सदैव
है इसका अपना महत्त्व
चंचल मन, अस्थिर मन
चंचलता एवम् अस्थिरता का ताना-बाना
टिकाऊ नहीं मन इस ताने बाने में
आए अच्छे विचार मन में
बोले इंसान तोल कर उन विचारों को
बोले मीठी वाणी इंसान सदैव
है इस का अपना महत्त्व
है इस में मीठी मिठास।

वो सूनी आंखें

रेखा

वो सूनी आंखें
आ जाती हैं बार-बार
मेरी आंखों के सामने
उसी क्षण
उसी क्षण घेर लेते हैं
कई प्रश्न मुझे
विधाता के विधान पर
होने लगता है सन्देह मुझे
वो आंखें
जो ज़िन्दगी के हर सितम को
हंस कर सह लेती थी
वो आंखें
जिसमें मुस्कराहट रहती थी
रोशनी की तरह
आज वो आंखें खामोश हैं
खामोश हैं वो ठहरे हुए पानी की तरह
दर्द का सैलाव है उन आंखों में
आज वो आंखें
सहमी-सी हैं
डरी-सी हैं
वो आंखें
देख रही हैं एक टक
उस दीवार को
जिस पर टंगी हुई है तस्वीर
उस ईश्वर की
जिसे वो दिन-रात पूजती रही
निश्छल भाव से
आज
आज मानो दे रही हैं मौन उलाहना
वो आंखें, उस ईश्वर को।
एक कोने में बैठी मैं
देख रही हूँ उन आंखों को
महसूस कर रही हूँ मैं
उन आंखों का दर्द
उन आंखों की पीड़ा
न जाने कब पहुँच गई मैं
उन आंखों के पास
मगर आश्चर्य!
उन आंखों को
मेरे आने का एहसास भी न हुआ
मगर जैसे ही
सामने पहुँची मैं
वो मेरी ओर
बेबसी से देखने लगी
कितना दर्द
कितनी पीड़ा
कितने सवाल हैं
समाए इनमें
उन आंखों की बेबसी
मेरी आंखों के आंसू बन गए
वो आंखें
पूछ रही थी कई प्रश्न मुझसे
मगर मैं क्या कहती
मेरे लब खामोश रहे
मुझे समझ नहीं आ रहा था
कैसे सहारा दूं
मैं क्या कहूँ
बस, बेबसी से देखती रही मैं
उन आंखों को
ये आंखें हैं
उस माँ की
जो ज़िन्दगी भर ज़िन्दगी से लड़ती रही
खुद भूखा रह कर वो
अपने परिवार का पेट पालती रही
बचपन से बुढ़ापे तक
गरीबी उसके साथ रही
फिर भी
ज़िन्दगी से कोई शिकायत न थी
मगर आज
आज उसकी आंखें नम हैं
क्योंकि, आज छीना जा रहा है
उस माँ से उसका घर
आने वाला है उसका परिवार
आज सड़क पर
लकड़ी के फट्टों से बना वो घर
उसके लिए किसी महल से कम नहीं है
इस घर से जुड़ी है
उसकी कई यादें, कई हसीन पल
वो यादें, वो पल आज उससे छीने जा रहे हैं
तभी तो, आज वो हार चुकी है
टूट चुकी है
मैं भी आज
खुद को बहुत शर्मिंदा
बहुत बेबस
महसूस कर रही हूँ
क्योंकि, मुझे एहसास हो रहा है
कि मैं
कुछ भी नहीं कर सकती।

लाहुली माताएँ

शेर सिंह मेरुपा

पहाड़ो में हँसकर खिला एक फूल
चेहरे को छूती हुई गरमी सरदी की धूल
स्वर्ग के दरवाज़े खुल जाएं
माथे पे पसीने का दाग धुल जाए
गहने तोड़ती है
बच्चे की मोह में सब कुछ छोड़ती है
सुबह से शाम तक खुद को थकाती है
रसोई में बच्चे की मनपसंद चीज़ पकाती है
तंदूर में पक रही बच्चे की खूबसूरत रोटी
डिब्बे में छुपा हुआ घी
माँ का प्यार देखकर पिघल गया
बच्चे का चेहरा धुलाने के लिए
पानी को मुलायम करती है
रोज़ शुभकामनाओं के साथ
दीये में तेल भरती है
बीमार बच्चे के साथ जब वह ठहरती है
वैद्य की तरह सर पे हाथ फेरती है
दुनिया को सकुशल रखने वाला आयुर्वेद
एक माँ के हाथों में ही होता है।

गाँव बिलिङ, लाहुल-स्पीति।

यारां सौगी बहारा

कंचन ठाकुर

यारों हुंदी ये,
यारों सोगी बहारा,
ये ही सच्ची गल मेरेयां यारा।
तांजे हुंदे आसे सारे कट्ठे,
ता करदे मौंजा-मस्तियां।
यार हुंदे बड़े प्यारे,
इक-दूजे वास्ते रंदे हर घड़ी खड़े।
तांजे कट्ठे उई के कराहैं पार्टी,
ताये हुई जांहै शरार्ती।
जांजे करना हुआं कोई तंग,
ताये बणी जायें दबंग।
हुण औणी यादां ये सब बहारा,
क्योंकि छड़ी चले हुण असे इन्हा कतारां।

गांव रिछाली, डा० धवली।

लाहुली विवाह - एक विहंगम दृष्टि

(क्या खोया क्या पाया)

सतीश लोप्पा

जैसा कि हम सब जानते हैं पिछले 5-6 दशक जनजातीय क्षेत्र लाहुल के सांस्कृतिक संदर्भ में बहुत उथल-पुथल भरे रहे हैं। एक ओर आधुनिक शिक्षा का तेज़ी से प्रसार हुआ और दूसरी ओर अनेक धार्मिक सम्प्रदायों ने प्रवेश किया। वह चाहे स्वामी ब्रह्म प्रकाश हो, ब्रह्म कुमारी हो, राधा स्वामी या निरंकारी सम्प्रदाय हो, वहीं ईसाई धर्म के नवागमन की आहटें भी सुनाई दी हैं। यद्यपि मोरावियन मिशन धर्म परिवर्तन में नाकाम रहा था, लेकिन आज परिस्थितियां बहुत भिन्न हैं। दूसरी ओर बौद्ध धर्म की पकड़ लोगों पर से शिथिल होती चली गई है। इस सब ने न केवल यहां की धार्मिक आस्थाओं को प्रभावित किया अपितु पारम्परिक संस्कृति को भी झकझोरा है। आर्थिक प्रगति और भौतिक सुख-सुविधाओं की होड़ और सशक्त बाहरी संस्कृतियों के साथ निरन्तर बढ़ते सम्पर्क ने इस प्रक्रिया को और तेज़ी तथा बल प्रदान किया। परिणाम स्वरूप बहुत से रीति-रिवाज़ समूल समाप्त हो गए। जब एक सांस्कृतिक विधा समाप्त होती है तो उस से सम्बन्धित पूरी की पूरी संस्कृति नष्ट हो जाती है। उदाहरण के लिए - घुषाल, शांशा, लोट के योर को ले सकते हैं, घंडाड़ छ्छः (Thsa-thsa) को ले सकते हैं, योम्बे दशैं ले सकते हैं, र्‌वःलिङ नौ नाथ की यात्रा को ले सकते हैं, यम्बे मलि को ले सकते हैं, और भी पता नहीं कितने सारे! इन में से हर किसी पर एक-एक बहुमंज़िला सांस्कृतिक इमारत खड़ी थी- वह सब अब ज़मींदोज़ हो चुके हैं।

यहां बात करना चाहूंगा विवाह सम्बन्धी रस्मो-रिवाज़ की। विवाह की रस्मों में हम परम्परागत सादगी को छोड़ते चले जा रहे हैं। सब से पहले हम ने अपना लिबास खोया। दूल्हा, बक्ट्रिक्पा, शिरदार सफेद कतर, पाजामा, सफेद पगड़ी और एक व्यक्ति विशेष के हाथों से बने पुला पहन कर दुल्हन को लेने जाते थे। आज सूट-बूट और टाई पहन कर जाते हैं। हां, पगड़ी अपना रंग-ढंग बदल कर अभी भी कायम है, पता नहीं क्यों? बांधना किसी को आता नहीं, जानते-न जानते किसी तरह काम चलाते हैं। गनीमत यही है कि दूल्हों ने हैट लगाना शुरू नहीं किया। थोड़ी हैरानी भी होती है, क्योंकि सूट-बूट-टाई के ऊपर पगड़ी के बनिस्बत हैट ज़्यादा जचने वाली चीज़ है। खैर.....

फिर हम ने फोरोग प्रेषण जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण रस्म को खोया। जिस में फोरोग यानि काग संदेश वाहक की भूमिका में होते हैं और पांच ध्यानी बुद्धों को विवाह का साक्षी बनाया जाता है और मंगल परिणामना की जाती है। इस के साथ-साथ ब्रङगेस शागुण की रस्म को खोया। यह दूल्हा-दुल्हन का एक दूसरे को वरण करने व प्रथम परिचय का प्रतीक था। और समस्त उपस्थित लोगों को टोटु का प्रसाद बांट कर विधि पूर्वक साक्षी बनाया जाता। ऐसे अर्थ पूर्ण रस्मों को नाकारा समझ कर त्याग दिया। ट्रिल्ड्रि की रस्म को भी काट-छांट कर पंगु बना दिया। इस सब के साथ-साथ हमने उठि नाम के पीतल या ताम्बे के मदिरा-पात्र को भी अब प्रायः खो ही दिया है। उसके स्थान पर प्लास्टिक की केनें आ गई हैं।

चन्द्रताल पत्रिका के 24वें अंक में फोरोग-प्रेषण पर एक विस्तृत लेख छपा था। सन् 2008 में श्री बिशन परशीरा जी की विशेष रुचि एवं प्रयास के फलस्वरूप फोरोग और ब्रङगेस की रस्मों को आधी शताब्दी से ज़्यादा समय बाद पुनर्जीवित करने का सफल प्रयास किया गया था। लेकिन उसके बाद किसी ने भी उन का अनुसरण करने की ज़हमत नहीं की। सभा सेमीनारो में सब कहते हैं, यह भी करना चाहिए, वह भी करना चाहिए; जिस दिन खुद करने का मौका आता है तो सब कुछ फुस्स! उपरोक्त प्रयास 2008 में कुल्लू के अन्दर किया गया था। 2015 में दो एक और सफल प्रयास सम्पन्न किए गए हैं।ये सब अलग-थलग घटनाओं के रूप में घटित हुई हैं; समुदाय के स्तर पर अभी सन्नाटा ही है। वर्ष 2013 में इन पंक्तियों के लेखक ने लाहुल में अपने घर में फोरोग एवं ब्रङगेस की रस्मों को पुनर्जीवित करने का सफल प्रयास सम्पन्न करवाया। लेकिन क्या फर्क पड़ता है, इस का भी हश्र हम सब पहले से जानते हैं। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसके लिए सामूहिक प्रयास की दरकार है। इस के लिए क्षेत्र के सेहणु वर्ग, जिन के निर्देशन में ही विवाह सम्पन्न होते हैं, उन का सम्मेलन करवाना होगा। उन सब को इन रस्मों के महत्त्व को समझाना होगा और इन को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता को जताना होगा। अगर ये लोग इस विषय को समझ कर मान जाते हैं तो बाराती और घराती तक संदेश पहुंचाना और उसे कार्यान्वित करना बहुत आसान हो जाएगा। इस तरह ये रस्में पुनर्जीवित हो पाएंगी।

इन के इलावा विवाह के मौके पर प्रातः बजाए जाने वाले राग प्रोउहात को हमने लगभग खो दिया है। विवाह की विशेष धुनें जिन्हें ब्याऊ राग कहते हैं उसे भी खोने की ओर अग्रसर हैं। ये धुनें विवाह की रस्मों का अटूट हिस्सा रही हैं। अब उन्हें विवाह की रस्मों का अटूट हिस्सा न मान कर खाना पूर्ति का दर्जा दे दिया गया है। कोई बजाए तो ठीक न बजाए तो भी ठीक। इन धुनों को रस्मों का हिस्सा मान कर उचित और पर्याप्त समय तक बजवाना चाहिए। पारम्परिक रस्मों की एहमियत को दिल से मानना होगा, तो ही ये धुनें जीवन्त रह पाएंगी।

अभी तक हमने उन रस्मों की चर्चा की जिन्हें हम ने खोया है। अब ज़रा देखें कि इस सब के बदले में, उन की जगह पर हम ने क्या पाया है, क्या कुछ उदात्त हम ने जोड़ा है, अपनाया है।

कुछ और कहने से पहले मुझे यह स्वीकारोक्ति कर ही लेनी चाहिए कि हमारा जनजातीय समुदाय मांस-मदिरा का शौकीन रहा है- शायद

कुछ हद तक परिस्थितियों के कारण भी, और वैसी मानसिकता भी बन ही आई है। जिस विवाह में मांस कम मिले तो कहते हैं- ओ कुछ नहीं यार मज़ा नहीं आया। जहां पर मांस खूब खाने को मिले, महंगी शराब मिले कहते हैं- फलां ब्याह में, मज़ा आ गया। 'छूटने' तक मीट खाया। मतलब मांस-मदिरा पहले से था, लेकिन उस का हिसाब-किताब अब बहुत बदल गया है। पहले पानी और नमक में उबला मांस का एक-एक थोड़ा बड़ा टुकड़ा 'शाखल' मिलता था। अब मटन का ओड़ोड्ग, चिकन का ओड़ोड्ग, फिश का ओड़ोड्ग, पनीर का ओड़ोड्ग। यह फ्राई-वह फ्राई! होटलों के रसोइये बुलाने पड़ रहे हैं। शराब की बात करें तो, घर की बनी शराब की छुट्टी! अंग्रेज़ी शराब और बीयर! कई दशक पहले जो सफर सोलन नं० वन और थ्री एक्स रम की चन्द बोतलों से शुरू हुआ था वह आज ग्रीन लेबल, बेग पाईपर, अरिस्टोक्रेट, रोयल स्टैग से होते हुए बलेंडर्ज़ प्राइड और स्कॉच तक आ पहुंचा है। कहां तक जाएगा कहना मुश्किल है। इस दौड़ में दो तरह की प्रवृत्ति काम करती है। एक यह कि- कहते हैं - फलां की शादी में चिकन की दो आइटमें बनी थीं, मेरे पास तीन तो होनी चाहिए। साथ में फिश भी होगी। उस ने वह शराब पिलाई थी, मेरे पास उससे एक दर्जा ऊपर का तो होना चाहिए। दूसरी प्रवृत्ति वाले कहते हैं- फलां-फलां ने यह-यह खिलाया, मुझे भी खिलाना ही पड़ेगा। फलां-फलां ने यह-यह पिलाया मुझे भी तो पिलाना ही पड़ेगा। इस तरह यह अन्धी दौड़ जारी है। यदि इस वृत्ति पर वाकई रोक लगानी है तो बड़े पैमाने पर सामूहिक प्रयास करने होंगे। हम ने देखा है गांव स्तर पर कई जगह प्रतिबन्ध लगाए गए, और हर जगह विफल हुए। प्रयासों को गांव स्तर से ऊपर उठा कर सम्पूर्ण समुदाय के स्तर पर ले जाना होगा। एक ऐसी सशक्त पंचाट बनानी होगी जो सामाजिक आचरण को सकारात्मक दिशा दे सके।

अब बारी आती है नोटों के हार की। दूल्हा और दुल्हन को प्रस्थान के समय नोटों का हार पहनाने के दृश्य अब आम हो गए हैं। हालांकि, कण्ठी-मुड़की-अंगूठी जैसे आभूषण पहनने का चलन प्राचीन काल से ही रहा है। पर आज कल बारात प्रस्थान के समय सम्बन्धियों द्वारा पंक्तिबद्ध हो कर नोटों का हार दूल्हे को पहनाने और फोटो खिंचवाने का रिवाज़ बढ़ता जा रहा है। दुल्हन की विदाई के समय भी यही दृश्य उपस्थित होता है। जिन के निकट सम्बन्धी अधिक हों, वे तो नोटों से जैसे लाद दिए जाते हैं। इस प्रकार दूल्हा-दुल्हन को 'घेपङ' बना देना क्या अच्छा लगता है? कृपया रहम कीजिए इन बच्चों पर।

पिछले पांच-दस साल से पुरुष बारातियों को टोपी पहनाने का एक नया फण्डा चल निकला है। यह भी दिखावे से ज़्यादा कुछ नहीं है। क्या दिखाना चाहते हैं हम? जातीय अस्मिता का प्रतीक या लाहुलियत का दम्भ? यदि अस्मिता की बात है तो यह भावना हृदय के अन्तरतम से आनी चाहिए। अरे कितने लोग हैं, जो ब्याह-शादियों में अपने घर से टोपी पहन कर निकलते हैं? ऐसी चीज़ें बाहर से आरोपित नहीं की जा सकतीं, ये तो अन्दर से ही स्वतः स्फूर्त होती हैं। अस्मिता और आडम्बर के बीच का फर्क समझना चाहिए। इस का एक दूसरा पहलू भी है। पुरुषों को तो टोपी पहना दिया, महिलाओं को क्या पहना रहे हो? क्या उन को एक-एक अदद शॉल नहीं देना चाहिए। शॉल को छोड़ो, एक-एक स्कार्फ भी नहीं दोगे? उन्होंने क्या कोई पाप किया है? छोड़ो मेरे भाई, थोड़ा सा नैतिक साहस जुटाओ और निकलो इस अन्धी गली से बाहर।

एक और रस्म को लाहुलियों ने बड़े शौक-ओ-शान से अपना लिया है- वह है सिंदूर भरना और अंगूठी पहनाना। महिलाएं इस रस्म का खूब मज़ा लेती हैं। लेकिन इस रस्म के लाहुली संस्करण की भी अपनी ही विडम्बना है। हिन्दू समाज में, जहां से इसे हम ने लिया है, सिंदूर को सुहाग का प्रतीक माना गया है। इस की अपनी महत्ता, पवित्रता और गरिमा है। हम ने इसे मात्र 'ठट्ठा' बना दिया। यह 'ठट्ठा' नहीं एक पवित्र रस्म है, उस सिंदूर को पति के जीवन पर्यन्त मांग में सजा कर रखा जाता है। हम क्या करते हैं- कुछ हंसी-मज़ाक कर लिया, दूल्हे से कुछ रुपये वसूल लिए, सिंदूर भरवा ली, हो गया काम पूरा! अगली सुबह सिंदूर कहां गया, कोई अता पता नहीं। हमारी महिलाओं, विशेषकर नवयुवतियों को इस विषय में गम्भीरता से आत्मचिंतन करना चाहिए।

इन सब के अतिरिक्त एक और रस्म पिछले दरवाज़े से आ घुसा है। पिछले कुछ अर्से से लोग दूल्हे को वस्त्र भेंट करने लगे हैं और अंगूठी पहनाने लगे हैं। अंगूठियां बेशक दोनों ओर से पहनाई जाने लगी हैं। लेकिन लाहुल वालो सावधान! मुझे इस रस्म में दहेज के 'बीज' दिखाई दे रहे हैं। ये बीज अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न होने पर कभी भी अंकुरित हो सकते हैं। सदियों के अर्जित संस्कारों के कारण आज भले ही कोई मांग नहीं रहा हो लेकिन जिस तेज़ी से पुराने संस्कार क्षरित हो रहे हैं, दो-चार पीढ़ी बाद लोग मांगने लग जाएं तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। इस लिए बुराई को शुरू में ही खत्म कर देना चाहिए। अंग्रेज़ी कहावत है न -'निप द ईविल इन द बड़'। हमें यही करना चाहिए। मैं तो चाहता हूं कि सभी लाहुली दूल्हे अंगूठी ग्रहण करने से इन्कार कर दें! जानता हूं सोने का मोह संवरण आसान नहीं। फिर भी अपेक्षा तो रखनी ही चाहिए।

यह सही है कि इस परिवर्ततशील संस्सार में कभी-कभी कुछ बाहरी चीज़ों को अपनाना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में उस रस्म-रिवाज़ की आत्मा को पकड़ कर, और फिर उसे सही परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण रूप से अपनाना चाहिए। मात्र बाहरी स्वरूप को पकड़ कर बैठने से कुछ भी भला नहीं हो सकता। आत्मा के बिना शरीर को लाश कहते हैं। और लाश को ढोते फिरना निरी मूर्खता है।

विवाह के संदर्भ में सिर्फ एक ही चीज़ मुझे अच्छी दिखाई दी- वह है पंगत में भोजन खिलाना। यद्यपि इस को भी हम ने पंगत के 'अनुशासन' को दरकिनार कर के अपनाया है। फिर भी....इस तरह भोजन करवाने से साफ-सफाई तथा व्यवस्था बनाए रखने में बड़ी सहूलियत होती है। अच्छी चीज़ें अपनाने में किसी को विरोध नहीं हो सकता। ■

शरदकालीन छोद्पा

ठिनले नमग्याल शास्त्री

विश्वभर में भिन्न-भिन्न देशों, प्रान्तों और भागों में अनेक त्योहार मनाये जाते हैं। नई उमंगों, उत्साहों और आशाओं के साथ इन पर्वों का इन्तज़ार करते हैं। ये मेले एवं त्योहार ऐसी ऐतिहासिक एवं सामाजिक घटनाएं होती हैं, जहां लोग अपनी खुशियों को परस्पर बांटते हैं। ये तीज-त्योहार प्रायः फुर्सत के क्षणों में ही मनाये जाते हैं। सामाजिक जीवन में भी इनका विशेष महत्त्व रहता है। इन त्योहारों के आयोजन के पीछे धार्मिक-आस्था हो या सामाजिक, सांस्कृतिक पहलू। वास्तव में (लोक) जन भावना ही सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों को समृद्ध करने तथा जीवन को गतिशील बनाये रखने में सहायक होती है। यद्यपि इन उत्सवों के पीछे कुछ न कुछ ऐतिहासिक कारण तो होते ही हैं। इनकी सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब हम इन मेलों को यथावत-पूर्ववत हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। ये मेले एवं त्योहार हमारे समाज की प्राचीन सांस्कृतिक, सामाजिक एवं धार्मिक विशिष्टता और विविधता को अभिव्यक्त करते हैं। आज सम्भवतः इनका महत्त्व न्यूनाधिक घट गया हो, परन्तु प्राचीन समय में ये मेले हमारी सांस्कृतिक पहचान, धार्मिक आस्था और जीवनशैली का महत्त्वपूर्ण साधन थे। इन त्योहारों के माध्यम से ही अमुक समाज की शिक्षा, धार्मिक परम्परा, जीवनशैली, समृद्ध संस्कृति आदि का दिग्दर्शन एवं आकलन किया जा सकता है।

लाहुल घाटी में भागा उपत्यका में स्थित खङसर ग्राम जो पुराने समय में रजबाड़ों की राजधानी रही थी। उसी राजघराने में '' छोद्पा'' नाम से अभिहित मुखौटा नृत्योत्सव को प्रतिवर्ष दो बार मनाया जाता है। ग्रीष्मकालीन एवं शरदकालीन छोद्पा को स्थानीय लोग बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाते रहे हैं।

खङसर राजघराने में ''ग्रीष्मकालीन छोद्पा'' भोटपंचांग अनुसार सातवें मास की पूर्णिमा तथा ''शरदकालीन छोद्पा'' दूसरे मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। शरदऋतु के '' छोद्पा मुखौटा नृत्योत्सव'' की पूर्व सन्ध्या अर्थात चतुर्दशी को खङसर खर (राजमहल) से कतिपय लोग जिसमें ल्हब्दगपा-(देव पूजक) दमनपा-(नगाड़ा वादक) और कुछ गीतकारों की टीम सारङ गांव में वोनपो (ज्योतिषशास्त्री) के आमन्त्रण हेतु तथा सारङ गांव में आम जनता को प्रवेश दिलाने हेतु जाती है। जिसे ''छू'' के नाम से जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि लोसर (नववर्ष) के पश्चात सारङ गांव (देवथान) तथा सारङ से खङसर तक की ऊपरी पगडण्डी को देव स्थल मानते हुए जन आवागमन बन्द कर दिया जाता है। ''छू'' हेतु जाने वाली टोली अपने साथ सारङ योगमा के घर प्रतिष्ठापित धर्मपाल के पूजार्थ दीपक प्रज्वलन के निमित्त घी और कपड़े का टुकड़ा (रेखा) ले जाते हैं।

इस दिन सारङ पगपा के आंगन में सभी गांव वाले एकत्रित होते हैं। ''छू'' की टीम का स्थानीय अंदाज़ में फूल भेंट कर स्वागत किया जाता है। सर्वप्रथम स्थानीय लौकिक देवताओं की पूजा की जाती है। तदनन्तर ''छू'' में आए लोगों के साथ ग्रामवासी भी सम्मिलित होकर ''तोङरोग गीत'' (गोलाकार पंक्तिबद्ध आपस में हाथ पकड़कर गीत गाते हुए नृत्य) पर नृत्य किया जाता है। रात के समय सारङ पगपा और बरजिगपा के घर समागत मेहमानों का अतिथि-सत्कार होता है। सभी ग्रामवासी भी इस टीम के साथ रात्रि आयोजन में सम्मिलित होते हैं। हर एक घर से कलछोर (शगुण हेतु अरक) लाया जाता है। लोसर के दौरान गाए जाने वाले ''ल्हरङस'' गीतों को भी सभी मिल कर गाते हैं। छङ, अरक आदि पेय पदार्थों का आनन्द लेते हैं। स्वादिष्ट भोजन भी परोसा जाता है। दूसरे दिन सुबह 'वोनपो' के आगमन से पूर्व ''छू'' की टीम पुनः खर की ओर वापिस लौट आती है।

पूर्णिमा के प्रातः 'वोनपो' सारङ से कुछ लोगों के साथ खङसर खर की ओर प्रस्थान करते हैं। खङसर खर के छत पर दो ढोल वादक उनके आगमन पर स्वागत राग (लमरग) बजाते हैं। 'वोनपो' भी अपने घर से पूजार्थ घी, तेल और कपड़े का टुकड़ा (रेखा) ले कर आते हैं। 'वोनपो' के आगमन के पश्चात राजभवन के गृहतल में बुद्धशासन की अभिवृद्धि एवं राजभवन की परिरक्षा हेतु प्रतिष्ठापित धर्मपालिका इष्ट देवी दीर्घायुष्मती की प्रतिमा के अन्धेरे कक्ष के द्वार को खोला जाता है। साथ ही उत्तर दिशा में खुलने वाली खिड़की को

▼ *खङसर महल, ग्रीष्म एवं शरद छोद्पा आयोजन स्थल/परिसर*

भी खोला जाता है। 'वोनपो', कोनञेर (पुजारी) आदि कुछ लामागण इष्ट देवी की पूजा-अर्चना बौद्ध तान्त्रिक-अनुष्ठान विधि से करते हैं। सभी मुखौटों को बन्द कमरे में मौजूद लकड़ी के सन्दूकों से निकाला जाता है। सभी को कपड़ों से साफ कर मक्खन मल कर सजाया जाता है। सभी नर्तकों को विशेष प्रकार के परिधानों को पहनाकर तैयार करवाया जाता है। पूजा-पाठ के पश्चात 'वोनपो' नृत्योत्सव के शुभारम्भ का आदेश देता है। ''ग्रीष्मकालीन छोद्पा'' के सम्बन्ध में कुछ वर्ष पूर्व ''कुन्ज़ोम'' नामक पत्रिका में छप चुका है। उसमें ग्रीष्म और शरदऋतु दोनों के दौरान एक समान नृत्यों के मंचन के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया है। अतः यहां फु छोद्पा नृत्य और कोको छ़ोमो नृत्य के बारे अधिक नहीं लिखा जाएगा।

1. फु छोद्पा नृत्य -

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि फु छोद्पा नृत्य का मंचन दोनों ऋतुओं में किया जाता है। इस नृत्य के दोनों ऋतुओं में अभिनीत शैली में लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। ऐसी मान्यता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में विशेषतः हिमालय क्षेत्र में जब मानव का उद्भव हुआ था तो बोधिसत्त्व पिता कपि और माँ राक्षसनी के संसर्ग से सन्तानों की उत्पत्ति हुई। इसी के आधार पर इस नृत्य को अभिनीत किया जाता है।

2. ञिल्दापा नृत्य -

ग्रीष्म ऋतु में हिम सिंह और वानर नृत्य होता है परन्तु शरदऋतु में इसके स्थान पर ञिल्दापा मुखौटानृत्य होता है। इस समय लाहुल बर्फ से आच्छादित होता है। इस नृत्य में सात मुखौटाधारी नर्तक होते हैं - पहला बुजुर्ग मुखौटाधारी, दो रास्ता लगाने वाले (लमशगपा), एक तीर फैंकने वाला (ञिल्दापा) दो अन्य धनुर्धारी (बोस-बोस छे छुङ) और अन्त में एक नारी मुखौटाधारी (करमोकर)।

श्री लालचन्द प्रार्थी द्वारा प्रणीत 'कुलूत देश की कहानी' और श्री पदमचन्द्र कश्यप ने ''कुल्लुई लोक साहित्य'' में महाभारत से जुड़ी पौराणिक जनश्रुति एवं किंवदन्ती का ज़िक्र किया है। उस किंवदन्ती के अनुसार महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व में युधिष्ठिर ने श्री कृष्ण और यदुवंशियों के संहार का समाचार सुना, तब महाप्रस्थान का निर्णय लिया। पांडव जब महाप्रस्थान के लिए ''हिमवन्त महागिरिम्'' की ओर निकले तो मार्ग में कुलूत देश में पहुँचे। वहां भीम ने अपने वनवास के दौरान हिड़िम्बा के साथ शादी कर ली थी। राक्षस प्रवृत्ति वाले हिड़िम्बा का भाई तण्डी लोगों पर अत्याचार करता था। भीम ने उसका वध कर दिया। तण्डी की पुत्री सुदंगी से विदुर का ब्याह कर दिया। जबकि महाभारत में विदुर अविवाहित रहे। उसके दो पुत्र भोट और मकड़ पैदा हुए। भोट से लाहुल-स्पीति, लद्दाख आदि देश बसा तो दूसरे मकड़ से वर्तमान कुल्लू बसा।

किंवदन्ती के अनुसार जब पाण्डव हिमवन्त देश की ओर अग्रसर थे तो रोहतांग दर्रे को पार कर लाहुल में प्रवेश किये। यहां के स्थानीय वासियों द्वारा उनका आदर सत्कार किया गया। इस नृत्योत्सव में भी हिमालय में विचरते हुए अर्जुन आदि धनुर्धरों द्वारा बाण चलाने तथा द्रौपदी के साथ प्रेमालाप करने की नृत्यकला को बखूबी दर्शाया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पहला बुजुर्ग नर्तक जो विदुर के रूप में हाथ में डण्डा लिए, उसके बाद पांच मुखौटा नर्तक जो हाथ में धनुष बाण लिए होते हैं पांच पाण्डव भाइयों के प्रतीक हैं। अन्त में नारी नर्तक द्रौपदी के रूप में है। वह भी धनुष-बाण लिए है। यहां उल्लेखनीय है कि स्थानीय भाषा में इन्हें क्रमशः बगगदपो (विदुर) लमशगपा ञी (युधिष्ठिर और भीम) ञिल्दापा (अर्जुन) (मुखौटे मस्तक पर सूर्य और चन्द्र का चित्रण) बोस-बोस छेनपो और छुङ (नकुल और सहदेव) और करमोकर (द्रौपदी) कहा जाता है। ये सात मुखौटाधारी नर्तक गृहतल में मौजूद कक्ष की उत्तरी दिशा के किवाड़ से बाहर निकलते हैं। इसके साथ एक नगाड़ा-वादक भी बाहर निकलता है। जबकि दो नगाड़ा वादक नृत्यशाला (छ़ोमखङ) के बाहर खिड़की के दोनों ओर बैठकर लमशगपा राग अर्थात मार्ग खोलने का विशेष राग बजाते हैं। राग बजते ही पहला लमशगपा अर्थात धनुर्धारी राजमहल से पूर्व दिशा की ओर बढ़ता हुआ बर्फ में कुछ दूरी तक रास्ता लगाता है। बीच-बीच में नगाड़ा-वादकों के शुगशुग रग (बलि विसर्जन राग) पर तीर फैंकने का अभिनय करता है। इस प्रकार कुछ दूरी तय करने के पश्चात वह पुनः ऊपर की ओर जाता है। राजमहल से कुछ दूरी पर पांच छोरतेन (स्तूप) बने हैं, वहां पहुंच कर दूसरों की प्रतीक्षा में रहता है। इसके पश्चात दूसरा लमशगपा उसी रास्ते से नीचे पूर्व दिशा की ओर बढ़ता है। विशेष प्रकार के राग बजते रहते हैं। लमशगपा दो गुना रास्ता लगाकर पुनः उसी नृत्यशैली को अभिनीत कर छोरतेन के पास लौटता है।

अन्त में ञिल्दापा उसी विशेष राग पर नृत्य करते हुए तीन गुना रास्ता तयकर दो बार तीर छोड़ने का असफल प्रयास करता है। अन्त में शुग-शुग राग पर एक तीर को छोड़ दिया जाता है। तीर छोड़ते समय मेले में आए लोग सीटी बजाते हैं। माना जाता है कि ऐसा करने से सारी दुष्ट आत्माएं, भूत-प्रेत, पिशाच, अमानुषी आपदाओं आदि का शमन एवं दमन हो जाता है। तीर छोड़ने के पश्चात ञिल्दापा और पूर्व दो लमशगपा छोरतेन की परिक्रमा कर लौटते हैं। इधर, राजमहल के ऊपर बने छोरतेन के सामने बग गदपो, बोस-बोस छे-छुङ और करमोकर उन तीनों के इन्तज़ार में रहते हैं। बीच-बीच में बोस-बोस छे-छुङ करमोकर को यदा-कदा पकड़ कर आलिंगन करने का हास्यास्पद अभिनय करते हैं। उन तीनों के पहुंचने पर सभी नर्तक एक साथ मुख्य द्वार से प्रवेश कर नृत्यशाला में पहुंचते हैं।

अन्दर नृत्यशाला में राजभवन का पुजारी पहले से ही बर्फ के त्रिकोण बलि को बनाकर रखता है। उसमें सरसों के सूखे पौधों की डालियों

छेम खङः, मुखौटा नृत्य कक्ष

को चुभोकर रखता है। सभी मुखौटाधारी नर्तक बाहर से आते समय अपने तीरों के सिरे पर बर्फ के छोटे-छोटे गोले लगाकर लाते हैं। आते ही नृत्यशाला के उर्ध्वभाग में क्रमशः खड़े हो जाते हैं। उसी उर्ध्वभाग के ऊपरी कक्ष जिसे ज़बखङ ञीङ्पा (पुराना अतिथि कक्ष) कहा जाता है, में ठाकुर, ठकुराइन, कुलीन वर्ग, शाही मेहमान, पुजारी आदि बैठते हैं। वस्तुतः इन उत्सवों में शाही लोग इसी कक्ष की खिड़की से नृत्योत्सव का आनन्द लेते हैं। पुजारी उक्त कक्ष की खिड़की से नर्तकों के हाथ से एक-एक तीर ले लेता है।

इसके पश्चात ऊपर कक्ष से पुजारी आवाज़ देते हुए कुछ प्रश्न पूछता है। सभी नर्तक ऊपर की ओर मुड़ जाते हैं। पुजारी पूछता है - रोहतांग में कितनी बर्फ थी? नर्तक इशारों से अपने हाथों को छाती तक ले जाते हैं। क्या आँखें तो नहीं जलीं? सभी नर्तक अपनी आँखों पर हाथ रखकर नहीं-नहीं का संकेत करते हैं। इस वर्ष क्या फसल अच्छी होगी? सभी नर्तक अपने तोंद पर हाथ घुमाने का अभिनय करते हैं इस प्रकार कई प्रश्न पूछे जाते हैं। इन प्रश्नों से साफ ज़ाहिर होता है कि लोग सुख, समृद्धि और खुशहाली की कामना करते हैं।

इसी बीच ''करमोकर'' एक झाड़ू ले आता है। ऊपर बुजुर्ग नर्तक से लेकर क्रमशः सभी नर्तकों के पावों से बर्फ हटाता है। जैसे ही बोस-बोस छे-छुङ के पास पहुंचता है उन दोनों के सिर पर झाड़ू से मारता है। वे दोनों भी उसे पकड़कर जबरन प्रेम बद्ध आलिंगन आदि करने का हास्यास्पद अभिनय करते हैं। इसके पश्चात वह पुनः एक खेम् (काष्ठ निर्मित बेलचा) ले आता है। ज़मीन पर गिरी सारी बर्फ को हटाते हुए ऊपर से क्रमशः नीचे बोस-बोस छे-छुङ तक पहुंच कर पुनः उनके सिर पर खेम् चला देता है। दोनों बचने की कोशिश करते हैं। जिससे रुष्ठ होकर दोनों उसके ऊपर चढ़ जाते हैं। यदा-कदा अश्लील एवं हास्यास्पद हरकतें करने का अभिनय भी करते हैं। पूरी दर्शक दीर्घा में हँसी-खुशी का माहौल बन जाता है। अन्त में वह एक ''पिल'' (काष्ठ निर्मित छाननी) ले आता है। उसे घुमा-घुमाकर सभी नर्तकों को शुद्धि करने का अभिनय करते हुए दोनों बोस-बोस के सिर दे मारता है और शीघ्र वहां से भाग जाता है।

तदनन्तर बर्फ से निर्मित तिकोने बलि के सामने सभी नर्तक नगाड़े के विशेष राग पर नृत्य करते हुए सामने आते हैं। इसी बीच ''करमोकर'' अपने हाथों से बलि को इशारा करते हुए बाहर चले जाने का आह्वान करता है। करमोकर बलि को तिपाई के तिकोने फलक पर रख देता है। तीनों ओर काठू के सत्तू से त्रिकोणाकार बनाते हुए एक लम्बी रेखा खींच ली जाती है। जो उसके मार्ग के रूप में दिक् दर्शन कराती है। अतः बलि को तीन अलग-अलग जगहों पर रखा जाता है। ढोल नगाड़ों के विशेष राग पर ''करमोकर'' के

छेम खङः का वाह्य कक्ष, वादकों के बैठने की जगह ▶

शारीरिक एवं हाथों के अभिनयपूर्वक संकेतों से तीसरी बार शुग-शुग राग पर सीटी, आवाज़ आदि देते हुए बलि को फैंक दिया जाता है। इस प्रकार अपशकुनों का उपशमन हो जाता है।

इसके पश्चात सभी नर्तक ''ज़िल्दापा -राग'' पर नृत्यशाला में अलग-अलग अदाओं, हावभावों वाली नृत्यशैली में छह बार नृत्यशाला की परिक्रमा कर नृत्यकला का प्रदर्शन करते हैं। इसी बीच ''करमोकर'' नृत्यशाला में मौजूद किसी औरत जिसने चादर औढ़ रखी है, से जबरन चादर खींच ले जाता है। चादर को नीचे ज़मीन पर बिछाता है। खर के अन्दर से ''कलचोर'' अर्थात शागुण हेतु केतली भर ''छङ'' पहुंचता है। चादर पर बैठकर ''करमोकर'' तीर के सिरे को ''छङ'' की केतली में डालते हुए ऊपर-नीचे डालता है जो शगुण का प्रतीक है। यह शागुण युलला सोनमपा (ग्राम देवता-कृषि) के नाम पूजा जाता है।

पुनः इसके बाद नृत्यशाला में धनुष बाण को दोनों हाथों से पकड़कर ढोल-नगाड़ों के विशेष राग पर नृत्य का प्रदर्शन होता है। बीच-बीच में दर्शकों के मध्य कुछ मनचले लड़के-लड़कियां ''करमोकर'' को दर्शक दीर्घा के पीछे छुपा देते हैं। और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हुए पूछते हैं-''ज्ञाल्पो भोनग ख्योद अने गरु योद? (ज्ञालपो भोनग तुम्हारी पत्नी कहाँ हैं?) दोनों बोस-बोस छे-छुङ उसे ढूंढते हुए इधर-उधर भटकते हैं। दर्शकदीर्घा में बैठे लोगों के बीच अपने हाथ में धारण किए धनुष के सिरे को आगे रख दौड़ पड़ते हैं। मानों कि उससे दर्शकों को बींध या चुभो दे। इस प्रकार चारों तरफ इसी शैली को अपनाते हुए ''करमोकर'' को ढूँढ लेते हैं। पुनः हास्यस्पद हरकतों के अभिनय से दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। पूरा वातावरण ठहाकों से गूँज उठता है। इस प्रकार तीन बार नृत्यशाला की परिक्रमा विशेष नृत्यशैली का प्रदर्शन करते हुए वापिस लौट जाते हैं।

यहां उल्लेखनीय है कि ग्रीष्मकालीन छोद्पा के दौरान हिम सिंह-वानर नृत्य में बजाये जाने वाले राग-थाप के समान शरदकालीन ''ज़िल्दापा '' के राग में किंचित अन्तर भर है। ढोल-नगाड़ों के थाप में एकाध थाप का ही फर्क है। गर्मियों के छोद्पा में उसे थोड़ा ऊंची आवाज़ और सर्दियों के छोद्पा में राग थोड़ी नीची आवाज़ में सुना जा सकता है। अतः कुल मिला कर दोनों ऋतुओं के छोद्पा मुखौटा नृत्योत्सव के विभिन्न नृत्यों के अनुसार ढोल-नगाड़ों के राग भी भिन्न-भिन्न है।

3. छोमो कुकु-बग चोङ चोङ -

इस नृत्यकला के सम्बन्ध में उपरोक्त पत्रिका में छप चुका है। इसमें विशेषतः पंच पूजनीय देवियों की नृत्यकला का प्रदर्शन होता है। विस्तृत जानकारी के लिए ''कुन्ज़ोम'' पत्रिका को पढ़ें। अन्त में ''वोनपो'' द्वारा मंगल पूजन कर कक्ष के द्वार को अगले छह महीने के लिए बन्द करवा दिया जाता है।

उल्लेखनीय है कि राजघराने में मौजूद मुखौटों में हिम सिंह और वानर मुखौटे लकड़ी से तथा अन्य सभी मुखौटे कपड़े के ऊपर चिकनी मिट्टी के लेप को चढ़ाकर बनाया गया है। मुखौटों की कलाकृति को देखकर ऐसा लगता है मानो इन्हें मंजे हुए कलाकार ने बनाया है। कला की दृष्टि से यह भोट कला से प्रभावित है। सभी मुखौटे विभिन्न रंगों से चित्रित किये गये हैं। लेकिन काल की गति ने इन्हें भी नहीं बख्शा है। कुछ मुखौटे नष्ट प्रायः हैं। साथ ही इनके परिधान विचित्र रंगों वाले वस्त्रों से निर्मित हैं जो अब काल का ग्रास बन गये हैं।

हिम सिंह मुखौटा ▶

महल का पृष्ठ भाग एवं छेर्तेन जहां शरद छोद्पा के समय ज़िल्दापा विश्राम करते हैं ▼

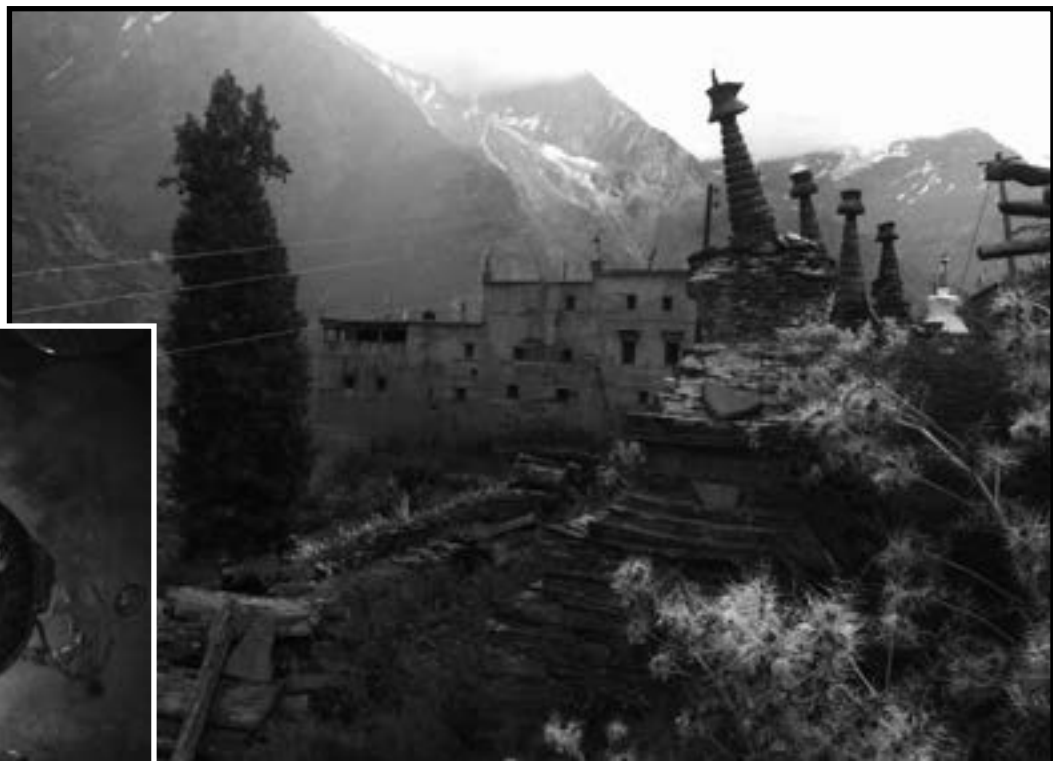

▼ *ज़िल्दापा नृत्य मुखौटे*

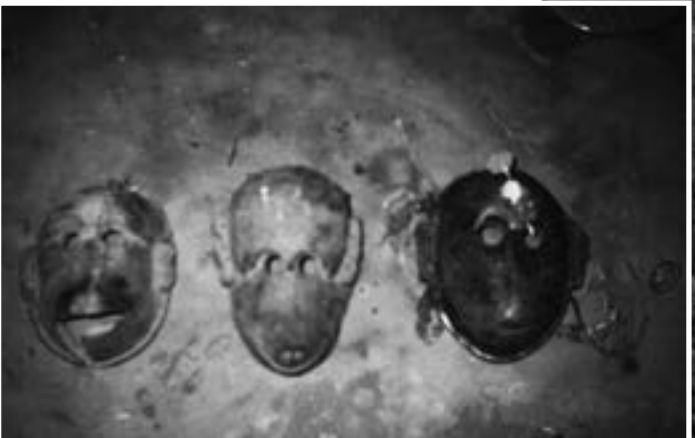

परम्परानुसार इस शरदकालीन छोद्पा के पश्चात कुछ दिनों के भीतर खङसर खर से कुछ लोग दारचा में स्थानीय देवता ''कुन्दुरु'' के दर्शनार्थ जाते हैं। ''कुन्दुरु'' खङसर खर का भी देवता है। स्थानीय भाषा में इस दर्शन हो ''छग'' (दर्शन या प्रणाम) कहा जाता है। कुछ लोग जिसमें ल्हब्दगपा, दमनपा, कुछ गीतकार और दो व्यक्ति (नगाड़ों तथा बकरा को ढोने वाले) एक बकरा लेकर बर्फ के बीच रास्ता लगाकर निकलते हैं। पहले पड़ाव में रात को जिस्पा ग्राम में ठहरते हैं। दूसरे दिन प्रातः जिस्पा से प्रस्थान कर दारचा पहुंचते हैं। ग्रामवासी मेहमानों को आदर-भोजन कराते हैं। देवता के थान पर बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। दारचा ग्राम वासियों द्वारा रात्रिभोज का आयोजन किया जाता है। रात्रि भोज में मांस-मदिरा के साथ-साथ ल्हरङ्गस, डललू, झूङलू आदि गीत भी गाये या गवाये जाते हैं। शोनलू पर सभी लोग नाचते भी हैं। दूसरे दिन सुबह ''छग'' की टोली खङसर वापिस लौट आती है।

अत्यन्त खेद के साथ कहना पड़ता है कि यह परम्पराएं अब खत्म कर दी गई हैं। इधर कई वर्षों से छोद्पा नृत्योत्सव का आयोजन भी बन्द कर दिया गया है। इन सबके पीछे सम्भवतः सबसे बड़ा कारण तो शिक्षा का आधुनिकीकरण और पुरानी संस्कृति एवं परम्पराओं के प्रति उदासीन रवैया या नकारात्मक सोच ही है।

अन्त में पाठकों से इस बात को सांझा करना आवश्यक समझता हूँ। आज औद्योगिक क्रान्ति, वैश्वीकरण, तकनीकी विकास, उपभोक्तवादी संस्कृति और आधुनिकता के इस दौर में न केवल लाहुल-स्पीति अपितु सम्पूर्ण हिमालय में नवीन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक समीकरण बनने लगे हैं। फलतः हिमालयी लोग अपनी प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं, मान्यताओं और धारणाओं को भूलने लगे हैं। प्राचीन परम्पराओं के विखण्डन और सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास के कारण आज समाज में अनेकविध विकृतियां पनपने लगी हैं। अतः हमें आज नवीनता को अपनाते हुए प्राचीन को भी नहीं भूलना है। अर्थात प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं, रीति-रिवाज़ों का पोषण उतना ही हो जो श्रेष्ठ जीवन मूल्यों से सम्बद्ध हो। यदि इसमें कई प्रकार की विकृतियां हों तो उन्हें त्यागना ही श्रेयस्कर है। चूंकि समय गतिशील है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। अतः प्राचीन स्वस्थ परम्परा के साथ नवीनता का समुचित समन्वय स्थापित कर नयी सांस्कृतिक चेतना के साथ संवेदनशील समाज के निर्माण की आवश्यकता है। जो मूल्य पर आधारित हो, और वही जीवन एवं सामाजिक मूल्य संस्कृति, परम्पराओं और शिक्षा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित होकर समाज को आलोकित करे। इसी आशा के साथ। ■

गांव खङसर,पोस्ट कोलोङ, ज़िला लाहुल-स्पीति।

संदर्भ/ साक्षात्कार -

1 श्री मिफम अंङ्गल, गांव कोलोङ।

2 स्व. श्री टशि छोफेल, गांव खङसर।

3 श्री प्रेम सिंह, गांव खङसर।

इस लेख के प्रायोजक ▶

ठाकुर शिव चन्द जी हमारे बीच नहीं रहे

लाहुल के अन्तिम स्वतन्त्रता सेनानी, लब्ध प्रतिष्ठ राजनेता एवं समाज सेवी, ठाकुर शिव चन्द जी हमारे बीच नहीं रहे। चन्द माह पक्षाघात से पीड़ित रहने के बाद 24 अप्रेल, 2015 को 95 वर्ष की सुदीर्घ आयु पूर्ण कर उन्होंने इस संसार को सदा के लिए अलविदा कह दिया। लाहुल-स्पीति ने अपना एक दूरन्देश, सजग, सदा क्रियाशील, चहुंमुखी प्रतिभा के धनी और ज़िन्दादिल सपूत को खो दिया है। यह एक ऐसी क्षति है जिस की कभी पूर्ति नहीं हो सकती। लाहुल की वर्तमान और भावी पीढ़ियां बिलाशुबहा उन पर गर्व कर सकती हैं।

ठाकुर साहब का जन्म 13 अप्रेल, 1920 को लाहुल के जाहलमा गांव में श्री सोभा राम के घर हुआ। उन की माताजी का नाम श्रीमती ज़िलज़ोम था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राथमिक पाठशाला जाहलमा में ही ग्रहण की। कुछ समय के लिए उन्होंने केलंग स्कूल में भी शिक्षा ग्रहण की। लेकिन अधिक दिनों तक उनका मन वहां नहीं लगा। 1935 में उन्होंने मिडल स्कूल कटराईं, ज़िला कुल्लू में प्रवेश लिया। 1936 में आठवीं की परीक्षा पास की। वे अपनी कक्षा में प्रथम स्थान पर आए। फिर अंग्रेज़ी जूनियर और सीनियर कोर्स उत्तीर्ण कर के 1938 में हाई स्कूल कुल्लू में नवीं कक्षा में प्रवेश लिया। लेकिन स्कूल में एक अध्यापक की पिटाई से क्षुब्ध हो कर उन्होंने स्कूल छोड़ दी और लाहौर चले गए। वहां सनातन धर्म हाई स्कूल, गोल बाग में नवीं कक्षा में प्रवेश लिया। 1939 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा 850 में से 668 अंक ले कर पास की। तदन्तर डी.ए.वी. कॉलेज, लाहौर में प्रवेश लिया और 1944 में स्नातक की परीक्षा पास की। ठाकुर देवी सिंह जी के साथ वे दोनों लाहुल के प्रथम स्नातक बने।

ठाकुर साहब ने राजनीति का पहला पाठ भी लाहौर में ही हासिल किया था। 1938 में ब्रेडला हॉल, लाहौर में सुभाष चन्द्र बोस का भाषण तथा 1939 में जय प्रकाश नारायण के विचारों को सुनने का अवसर मिला और उन नेताओं से प्रभावित हो कर मातृभूमि के प्रति हरसंभव योगदान देने का संकल्प लिया। 1944 में महात्मा गांधी के भारत छोड़ो आन्दोलन में डी.ए.वी. कॉलेज के छात्रों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। ठाकुर शिवचन्द जी एवं ठाकुर देवी सिंह जी भी उस में शामिल थे। अंग्रेज़ों ने छात्रों पर लाठी चार्ज कर दिया जिस में ठाकुर शिवचन्द जी को बाजू और कंधे पर चोटें आईं। इस घटना के बाद मादरे वतन पर मर मिटने का जज़्बा और पुख्ता हुआ।

ठाकुर साहब को खेलों और नृत्य-संगीत में भी रुचि थी। वे किला लछमन सिंह थिएटर में नृत्य की कक्षाओं में जाते थे और सरस्वती कॉलेज, निस्बत रोड, लाहौर में वे गायन की शिक्षा लेने जाया करते थे।

आज़ादी की पूर्व वेला तक यानि 8 अगस्त, 1947 तक वे लाहौर में ही थे। हालात काफी गम्भीर होते जा रहे थे। 9 अगस्त, 1947 को कॉलेज के एक सहपाठी एवं मित्र मुहम्मद अली ने उन्हें रेलवे स्टेशन तक पहुंचाया और वे कुल्लू की ओर रवाना हुए।

1947 में ठाकुर देवी सिंह के साथ मिलकर लाहुल-स्पीति पीपल्ज़ एसोसिएशन की स्थापना की। आज़ादी के बाद देश भर में फसाद शुरु हो गए। इस दौरान पीपल्ज़ एसोसिशन ने लाहुल के गांव गांव में टीकरी पहरे की व्यवस्था की ताकि बाहर से आने वाले लोगों से यहां की जान-माल की रक्षा की जा सके। नैशनल वालंटियर फोर्स से अर्ज़ कर के लोगों को हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिलवाया गया।

1935 में लाहुल व स्पीति को एक्सक्लूडिड एरिया यानि वर्जित क्षेत्र घोषित किया गया था। 1948 में ठाकुर देवी सिंह एवं ठाकुर शिव चन्द के चिन्तन एवं प्रयासों के फलस्वरूप लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करने सम्बन्धी एक प्रस्ताव संविधान सभा को भेजा गया और एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली भेजने का फैंसला लिया गया जिस में मुंशी सजे राम, पंडित बसन्त राम, ठाकुर निहालचन्द, ठाकुर देवी सिंह एवं ठाकुर शिवचन्द शामिल थे। इस बीच पाकिस्तानी कबाइलियों ने कश्मीर और लद्दाख पर हमला कर दिया था। लाहुल के प्रतिनिधि मंडल ने नेहरु जी को लाहुल होते हुए लद्दाख के लिए एक वैकल्पिक मार्ग होने की सूचना दी। नेहरु जी ने फौज का मार्ग दर्शन करने के लिए इन लोगों से लौट जाने को कहा, और पक्का आश्वासन दिया कि देश की रक्षा का काम पूरा हो जाने पर आप की सभी मांगें मान ली जाएंगीं।

ठाकुर शिवचन्द जी को कुली और घोड़ों की व्यवस्था का ज़िम्मा सौंपा गया। उन के आह्वान पर लाहुल के लोगों ने बढ़ चढ़ कर अपना योगदान दिया। उन्हें लद्दाख से मनाली तक फौज की डाक व्यवस्था सुचारू रखने का भी ज़िम्मा सौंपा गया। जब कि ठाकुर देवी सिंह जी को 2/8 गोरखा रेजीमेंट के साथ बतौर गाईड भेजा गया। बाद में 2/11 गोरखा रेजीमेंट के साथ ठाकुर शिव चन्द एवं पं. वसन्त राम को बतौर गाईड भेजा गया। ठाकुर साहब दो वर्ष तक लद्दाख में रहे और अनेक सामाजिक कार्यों में शामिल रहे। वे कुशोक वकुला के साथ भी कार्यरत रहे। 1951 में वे पुनः कुल्लू पहुंचे।

लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करवाने का कार्य अभी अधूरा था। एक बार फिर एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली भेजने का फैसला लिया गया जिस में टशि दवा घरसंगी, ठाकुर देवी सिंह तथा ठाकुर शिव चन्द शामिल थे। इन लोगों ने डॉ. अम्बेदकर के सम्मुख अपनी मांगों को पुरज़ोर तरीके से पेश किया। आखिर अम्बेदकर साहब मान गए और कहा कि संविधान के पांचवें शेड्यूल (अनेक्सी), सितम्बर 1950 से भारत सरकार के एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी गज़ट में लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करवा देंगे। इस महती कार्य के लिए इन्हें सदा याद किया जाएगा। इस प्रतिनिधि मंडल ने लाहुल-स्पीति एडवाईज़री कौंसिल को अमली शक्ल देने की भी पुरज़ोर मांग उठाई। बाद में यह कौंसिल लाहुल-स्पीति की सशक्त आवाज़ बन कर उभरी। 1950 के पहले आम चुनाव में लाहुल-स्पीति के लोगों के लिए मतदान केन्द्र सर्दियों के दिनों में कलाथ, ज़िला कुल्लू में रखा गया था। इस का लाहुल-स्पीति के लोगों ने कड़ा विरोध किया और चुनाव का बहिष्कार किया। ठाकुर साहब ने इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

1954 में ठाकुर साहब को पंजाब सरकार के कम्यूनिटी प्रोजेक्ट, बटाला, ज़िला गुरदासपुर में चीफ सोशल एजुकेशन आर्गेनाईज़र के पद पर नियुक्ति मिल गई। 1957 में उन्हें लम्बा गांव, ज़िला कांगड़ा में बी. डी.ओ. के पद पर नियुक्त किया गया। 1971 में पदोन्नत कर के एस. डी. एम., आन्नी बनाया गया। बाद में एस. डी. एम., रोहडू के पद पर रहे। तदन्तर वे प्रोजेक्ट अफसर, किन्नौर के पद पर नियुक्त हुए।

1977 का वर्ष राजनैतिक उथल पुथल का वर्ष रहा है। राजा वीरभद्र सिंह एवं पंडित सुख राम के कहने पर उन्होंने सरकारी सेवा से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले कर अपने बाल सखा ठाकुर देवी सिंह के विरुद्ध चुनाव के मैदान में उतरने का फैसला किया। इस चुनाव में वे कामयाब नहीं हो सके। 1987 में एक बार फिर उन्होंने चुनाव लड़ने का फैसला किया। लेकिन राजा वीरभद्र सिंह के विशेष आग्रह पर उन्होंने आखरी वक्त पर अपना नामांकन वापिस ले लिया। उतार-चढ़ावों के बावजूद वे राजनीति में सतत सक्रिय रहे। काफी समय तक वे ज़िला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। कई राज्य स्तरीय कमेटियों के सदस्य रहे। लगातार इलाके के लोगों की सेवा में तत्पर रहे। वे अनेक गैर राजनैतिक संस्थाओं से भी जुड़े रहे और अन्त तक सक्रिय रहे। वे इण्डो तिबतन फ्रैंडशिप सोसाईटी के आजीवन प्रेज़ीडेंट रहे। राईसन आई हॉस्पिटल के आजीवन प्रशासक सह वित्त सचिव रहे।

जीवन पर्यन्त वे राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यों में सतत सक्रिय रहे। उन्हें कर्मठता की प्रतिमूर्ति कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। ऐसे बहु-आयामी व्यक्तित्व के स्वामी ठाकुर शिव चन्द जी का जाना अपने पीछे कितनी बड़ी रिक्ति छोड़ गया है, यह आसानी से समझा जा सकता है। ईश्वर उन के परिजनों को यह दुःख सहने की ताकत अता करे । और भगवान् अमिताभ बुद्ध उन्हें सुखवती स्वर्ग में चिर स्थान प्रदान करें!! ■

सतीश लोप्पा

'चन्द्रताल' परिवार आप को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है!!!

सम्पादक

लाहुल-स्पीति अतीत के झरोखे से

स्व. शिव चन्द ठाकुर

''घबरा न अंधेरे में शबे ग़म के मुसाफ़िर,
तेरे लिए बेताब है अग़ोशे सहर,
अगर शामिल न हो किस्सा हमारा,
तुम्हारी दास्तां कुछ भी नहीं है।
पस्त हिम्मत वह है जो राहे शोक़ में रह गए,
हौसले वाले के आगे दूर कुछ मंज़िल नहीं!''

लाहुल-स्पीति प्याली नुमा वादी चन्द्रभागा नदी और विभिन्न नालों से घिरा हुआः फौजी नुक्ता निगाह से, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दृष्टि से हिमाचल में एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है। यहां के लोग अपनी वेशभूषा, खान-पान, बोली और परिश्रमी प्रकृति के कारण ही अलग पहचान बनाए हुए हैं। इसे कई नामों से पुकारा जाता है - गरजा खंडोलिङ (शूरवीरों की भूमि), लायुल (देवताओं की घाटी) स्वांगला (आर्यों की घाटी)। लाहुल-स्पीति के अतीत के इतिहास पर दृष्टिपात करने से अनेक तथ्य सामने आते हैं।

(1) ऐसा माना जाता है कि पांडव परिवार अपने आखिरी समय में लाहुल के रास्ते से कश्तवाड़ होते हुए कश्मीर गए थे, इस के अवशेष आज भी उदयपुर आदि स्थानों में विद्यमान हैं।

(2) राजा घेपङ के रिवायती कहावत के अनुसार वे यारकंद से अपने बज़ीर बोटी को लेकर शाशन गांव में क्यामवज़ीर हुए। और लाहुल वासियों के लिए एक खोखले डंडे के अन्दर मीठा (फुलाड़ी) और काठू के बीज लाये।

(3) गुरु रिम्बोचे (आचार्य पद्म सम्भव) आठवीं सदी में लाहुल पधारे, बुद्धमत का प्रचार किया और गुरु घंटाल की स्थापना की।

(4) महान देश भक्त और क्रान्तिकारी रास बिहारी बोस लार्ड हार्डिंग पर बम फैंकने के बाद भूमिगत होने देहली से रोहतांग पार कर लाहुल आए तथा तीन महीने बाबू टुकटुक (जो पोस्ट मास्टर थे) के घर रहे, वहां ठहरने का लक्ष्य पत्र व अखबारों के माध्यम से सरकारी क्रियाकलापों से अवगत होना था। जब उन्हें मालूम हुआ कि गुप्तचर विभाग उन के बारे जानने और उन तक पहुंचने का प्रयास कर रही है तो उन्होंने तिब्बत के दुर्गम पहाड़ी रास्ते को पैदल पार कर हांगकांग और जापान पहुंचना मुनासिब समझा; वहां पहुंच कर उन्होंने महान पुरुष नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के साथ मिल कर मातृभूमि की आज़ादी हासिल करने के लिए इंडियन नेशनल आर्मी (I.N.A.) की नींव रखी ताकि मातृभूमि को अंग्रेज़ों की अधीनता से मुक्ति दिलाई जाए। उन के केलंग पधारने की स्मृति में उन का बुत आज भी केलंग में विद्यमान है।

अब मैं लाहुल के उस अतीत की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना मुनासिब समझता हूं जिस से यह पता चले कि किसी समय की शूरवीरों की यह भूमि किस तरह गुरबत, जहालत, तवममात और बीमारी का गहवारा बना रहा। मेरा लक्ष्य तत्कालीन लाहुल के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और राजनैतिक स्थिति को दर्शाना है। 1947 से पहले लाहुल-स्पीति की स्थिति ना गुफताबे थी। आर्थिक तौर पर पिछड़ा हुआ था, आय के साधन सिवाय कुठ के (जो 1935 के बाद की उपज है) बिल्कुल नामूद रहा। लोग उदरपूर्ति के लिए सर्दियों में कुल्लू और मैदानी इलाकों की ओर रोज़गार की तलाश में भटकते फिरते थे। मनाली से लाहुल-स्पीति बरासता (बाया) रोहतांग और कुंज़ोम दर्रा खच्चर रोड़ ही था। लोग भेड़, बकरियों और घोड़े, खच्चर पर लाद कर सर्दियों के छः महीने के लिए इकट्ठे राशन लाते थे, इस प्रकार लाहुल-स्पीति वाले एस्कीमो जैसी ज़िन्दगी बसर करते थे। भारी हिमपात शिद्दत की सर्दी के कारण छः महीने अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल कटे रहते थे। शिक्षा की दृष्टि से भी लोग बहुत पिछड़े हुए थे; सिर्फ एक मिडल स्कूल केलंग में और एक लोअर मिडल स्कूल लोट और एक काज़ा में था; वह भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ज़ेरेकियादत था। लाहुल-स्पीति को तत्कालीन पंजाब के यूनियनिस्ट सरकार ने गैर ज़राइत पेशा घोषित किया था, जिस की रूह से लाहुल-स्पीति निवासी न कुल्लू और न अन्य जगह ज़मीन खरीद सकते थे। अलबत्ता गवर्नमेंट ऑफ इंडिया के एक्ट 1955 के तहत लाहुल-स्पीति को वर्जित क्षेत्र घोषित किया गया था, जिससे विकास कार्य बिल्कुल ठप्प पड़ा था। बेगार सिस्टम जारी था, बुज़ुर्ग लोग बताते हैं कि केलंग से रामशिला तक प्रति कुल्ली आठ आने दिया जाता था, जागृति के अभाव के कारण लोग यह सब सह रहे थे ऐसी स्थिति में हम दोनों (ठाकुर देवी सिंह और ठाकुर शिव चन्द, लाहुल के प्रथम स्नातक) ने उन हालात को देख कर इलाके के विकास के लिए, लोगों में जागृति और चेतना जगाने के लिए उस वक्त के लाहुल-स्पीति के बारसूक अश्खास से सम्पर्क कर के 'लाहुल-स्पीति पीपल्ज़ एसोसियेशन' नामक एक अदारा की 1947 में स्थापना की जो बाद में एक शक्तिशाली संस्था के रूप में उभर पड़ा, आज़ादी के बाद उत्पन्न हमारी पीढ़ी को शायद इस की जानकारी न हो इसीलिए इस कामयाबी की कहानी, जो एक जद्दोजहद की कहानी है, को लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर रहा हूं।

मनुष्य का इतिहास सदा संघर्ष का इतिहास रहा है, मनुष्य ने इतिहास के हर युग में संसार के हर कोने में जुल्मो सितम, ज़बर व तशद्दुद, ना बराबरी, गरीबी, बेकारी भुखमरी के विरुद्ध सदा ज़बरदस्त जद्दोजहद किया, कुर्बानी दी। संघर्ष ने कभी धीमे गति से, कभी-उग्र रूप धारण कर के ज्वालामुखी की शक्ल अख्तियार की। उदाहरणार्थ 1917 में रूसी ज़ार के जुल्मो सितम के विरुद्ध बालश्विक इन्कलाब ने जन्म लिया। 1789 में फ्रांस में समानता, स्वतन्त्रता, भाईचारा का नारा गूंज उठा जिस ने तख्तोताज को हिला कर रख दिया और इंग्लैंड का औद्योगिक क्रान्ति जिसने उन देशों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन में हंगामा खेज़ परिवर्तन ला दी। भारतवर्ष में भी यद्यपि आज़ादी की चिंगारी 1857 में सुलगी थी मगर चालाक अंग्रेज़ी शासकों ने अपनी कूटनीति के कारण आरज़ी तौर पर दमन चक्र चला कर इस तहरीक को दबा दी, मगर भारत के बेदार मगज़, आज़ादी के परवानों व कौमी रहनुमाओं के दिलों के अन्दर इस आग में धीरे-धीरे चिंगारी की शक्ल लेना शुरू किया और अन्त में 1947 में भारत आज़ाद हुआ। आज़ादी की लड़ाई के दौरान की घटना जिस ने हम दोनों के जीवन में परिवर्तन ला दिया, का यहां ज़िक्र करना मैं उचित समझता हूं। 1942 में हम दोनों डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर के 12वीं कक्षा के छात्र थे, उस समय भारत छोड़ो आन्दोलन का नेताओं ने, आह्वान किया था। हमारे कॉलेज के छात्र भी उस आन्दोलन में शरीक हुए, अंग्रेज़ो भारत छोड़ो का नारा बुलन्द करते लाहौर के गोल बाग होते हुए अनारकली बाज़ार की ओर कूच कर रहे थे कि एक अंग्रेज़ सार्जिंट ने पुलिस का एक जत्था लेकर बगैर वार्निंग दिए हम कॉलेज के छात्रों की बुरी तरह मार पीट की और लाठी के प्रहार से हम तितर बितर हो गए। इस घटना ने हम दोनों के दिलों में हलचल पैदा कर दी और उस दिन से हम दोनों ने दृढ़ निश्चय किया एक अज़्म उठाया कि आईंदा ज़िन्दगी में जब भी अवसर मिले अपने देश, अपने इलाके के लिए अपनी जान की कुर्बानी देंगे।

वक्त और तूफान किसी की इन्तज़ारी किए बगैर गुज़र जाते हैं। इसी तरह वक्त गुज़रता गया और हम दोनों ने 1944 में ग्रेजूएशन कर ली। इसी दौरान हम दोनों ने लाहौर में आर्डिनेन्स फेक्टरी में कुछ अर्सा काम भी किया, उस के बाद हम दोनों लाहुल वापिस आ गए तथा 1947 में पूर्वोक्त संस्था की स्थापना की। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम फसाद ज़ोरों पर था और मुसलमान कुल्लू से भाग कर लाहुल, लाहुल से लद्दाख और लद्दाख से गिलगित, ज़ंस्कर, करगिल

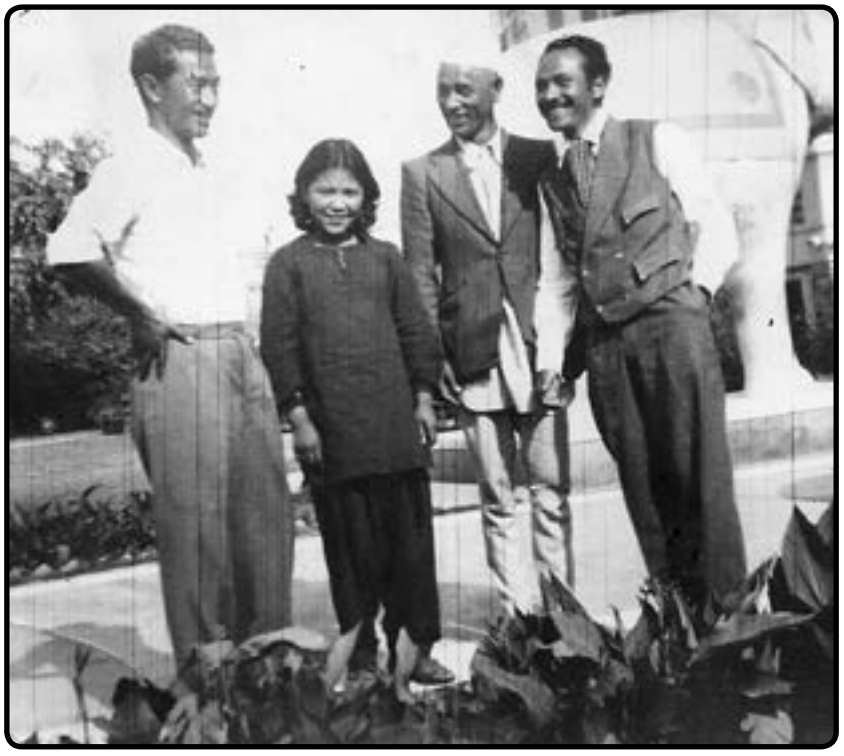

यह चित्र सन् 1951 में पं. नेहरू एवं डॉ. भीमराव अम्बेदकर से मुलाकात से पहले लिया गया था। प्रतिनिधि मंडल सदस्यः स्व. ठाकुर देवी सिंह, स्व. श्री टशि दवा घरसंगी तथा स्व. ठाकुर शिवचन्द।

की ओर जाते हुए उधम मचा रहे थे। उन से लाहुल निवासियों के जान माल की सुरक्षा के लिए इस संस्था के अन्तर्गत हम ने ठिकरी पहरा (प्रत्येक गांव में बारी-बारी से लोगों द्वारा पहरा देना) लगवाया और नेशनल वॉलंटियर फोर्स के लिए सरकार से अर्ज़ कर लोगों को राईफल चलाने का प्रशिक्षण दिया ताकि लोग अपनी रक्षा स्वयं कर सकें। इसी दौरान कुछ बुद्धिजीवी लोग (ठाकुर देवी सिंह, ठाकुर प्रताप चन्द, ठाकुर प्रेमचन्द, पं० बसन्त राम, श्री सोमदेव, श्री लालचन्द, मुंशी सज्जेराम, ठाकुर निहाल चन्द, स्पीति के नोनो टशी नमज्ञाल, श्री छ़ेटुग (पिनवेली) तथा स्वयं मैं इस सोच विचार में डूबे रहते थे कि किस तरह से लाहुल-स्पीति को विकास के पथ पर लाया जाए, आरक्षण मिले और संवैधानिक तौर पर जनजाति घोषित किया जाए। उन दिनों संविधान बनाया जा रहा था, अतः हम लोगों ने तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित नेहरू को लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र व वहां के निवासियों को जनजाति घोषित करने के लिए ज्ञापन दी, तार भेजी। जिस के उत्तर में भारत सरकार ने लाहुल-स्पीति के प्रतिनिधियों को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया और कान्सटीच्यूशन हाऊस कर्ज़न रोड़ के रूम नं० 81 में ठहरने की व्यवस्था की। हमारे प्रतिनिधि (ठाकुर देवी सिंह, मुंशी सजेराम, पं० बसन्तराम और मैं) दिल्ली की ओर रवाना हुए, परन्तु फसाद के कारण रास्ता अवरुद्ध था अतः मण्डी से ही हमें वापिस आना पड़ा, पुनः तार द्वारा हमारे प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया गया,

लेकिन इस बार भी दंगाफसाद के कारण जा नहीं पाये। अंत में 1948 में मई के अन्तिम सप्ताह हमारा वफद (Deputation) दिल्ली रवाना हुए। जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया जा चुका है कि पाकिस्तानी हमलावार गिलगित, असकरदो के कबाइली लूट मार कर लद्दाख के करगिल पर अधिकार जमा चुके थे। ज़ंस्कर के पदम गांव तक कप्तान रुस्तम अली के ज़ेरे कयादत लाहुल की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। दिल्ली पहुंचकर हम ने प्रधान मंत्री से मिलने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहे। 8-10 दिनों तक कोशिश करने के बावजूद हमें नेहरू जी से मिलने का समय नहीं दिया गया, परन्तु हमने हिम्मत नहीं हारी। आखिर एक दिन एक महापुरुष जिस ने अपना नाम नम्बियार बताया, ने हमें दूसरे दिन कर्ज़न रोड पर उन से मिलने के लिए कहा। हम दोनों दूसरे दिन उन से मिलने गए, वहां उन्होंने हम से हमारे कागज़ात लिए और कुछ देर बाद हमें भी अन्दर बुलाया नम्बियार ने हमें सुश्री मृदुला सेराबाई से मिलाया सुश्री मृदुला सेराबाई-नेहरू जी के निकटत्तम सहयोगियों में से एक, पाकिस्तान से भागकर आई महिलाओं के पुनर्वास के इंचार्ज। कागज़ात के छान बीन के बाद मृदुला जी ने हमें दूसरे दिन पुनः वहीं मिलने के लिए कहा। दूसरे दिन हम दोनों (मैं और ठाकुर देवी सिंह) अपने कबाइली ड्रेस में गए, मृदुला जी ने हमें बाहर बिठाया स्वयं कागज़ात ले कर नेहरू जी के पास गईं, चन्द मिन्टों के बाद हमें भी अन्दर बुलाया गया। मृदुला जी ने हमें नेहरू जी से मिलाते हुए कहा-ये दोनों कुल्लू, मनाली और रोहतांग के उस पार लाहुल-स्पीति के रहने वाले हैं। नेहरू जी कुछ परेशान नज़र आ रहे थे हमारी ओर मुखातिब होकर कहने लगे कि वे 1942 में मनाली, नगर गांव में रूसी कलाकार निकोलस रोरिक के निमंत्रण पर गए थे और फिर कुछ सोच विचार कर कहने लगे कि लाहुल-स्पीति तो बड़ा कठिन दुश्वार गुज़ार इलाका है और फिर खामोश हो गए। हम ने लाहुल-स्पीति की जानकारी देते हुए वास्तविकता से परिचित करवाया कि किस तरह यह घाटी छः महीने के लिए संसार से अलग थलग हो जाती है साथ ही कड़ाके की सर्दी और घाटी की दुर्गमता से परिचित करवाया। यह सुन कर कहा कि तुम्हारे ज्ञापन पर सोच विचार के बाद एक्शन लिया जाएगा, पुनः खामोश हो गये। चन्द लम्हों के बाद कहने लगे कि लद्दाख में पाकिस्तानी लुटेरे आगज़नी लूटमार कर आगे बढ़ रहे हैं और करगिल के इलाके पर कब्ज़ा कर लिया है। उस समय लद्दाख में हवाई अड्डा नहीं था। नेहरू जी ने हमसे पूछा कि क्या कोई ऐसा रास्ता मनाली की ओर से लद्दाख को जोड़ता है? हम तत्काल बोल उठे कि जनाब! लाहुल वाले केलंग, बारालाचा, लोंग लचा से हो कर तिब्बत, यारकन्द और लद्दाख से व्यापार करते हैं। बस फिर क्या था, नेहरू जी के गमगीन चेहरे पर मुस्कान उभर आई और पूछा कि क्या मई, जून के महीने लद्दाख के लिए रास्ता खुल जाता है? हम ने बताया कि जून के आखिरी हफ्ते तक हर हालात में हमारे लोग लद्दाख, रूपशो तिब्बत में ऊन, पश्म आदि के व्यापार के लिए जाते हैं। नेहरू जी ने खुश हो कर कहा कि आपकी माँगें मंजूर की जाएंगी, फिलहाल प्रश्न लद्दाख को बचाने का है और फौरन फोन उठा कर सचिव ए० बी० अय्यंगर और जनरल किरयप्पा से बात की तदुपरान्त सुश्री मृदुला सेराबाई हमें गृह सचिव और जनरल किरयप्पा से मिलाने ले गईं। गृह सचिव ने हम से रास्ते का ब्यौरा लिया और जनरल किरयप्पा ने नक्शा खोल कर रास्ते सम्बन्धी प्रश्न पूछे।

दूसरे दिन वे लोग हमें पुनः नेहरू जी से मिलाने ले गए, जनरल से भी मिलाया गया और हमें आदेश दिया कि एक फौजी मिशन साज़ोसामान मनाली के रास्ते से लद्दाख जाएगा और ठाकुर देवी सिंह को गाईड बना कर फौजियों के साथ जाने के लिए कहा गया तथा मुझे शीघ्र लाहुल पहुंच कर कुल्ली और घोड़ों के प्रबन्ध का काम सौंपा गया। चुनाचे 2/8 गोरखा रेजीमेंट कमाण्डेट मेजर हरिचन्द के ज़ेरे कमाण्ड में साज़ो सामान मनाली के रास्ते केलंग पहुंचे। मैंने कुल्लू व लाहुल के प्रशासन तथा स्थानीय लोगों के साथ मिल कर घोड़ों तथा कुल्ली का इन्तज़ाम किया। लाहुल के प्रत्येक घर से जिन के पास घोड़े थे उन्होंने घोड़े दिए, जिन के घर में आदमी थे वे कुल्ली के रूप में जाने के लिए तैयार हुए और जिन के घर में दोनों नहीं थे उन्होंने चारे का यथा सम्भव प्रबन्ध किया। इस मिशन की लाहुल निवासियों ने बढ़ चढ़ कर सहायता की। इस प्रकार साज़ो सामान फौजी मिशन स्व० ठाकुर देवी सिंह के बतौर गाईड लेह लद्दाख की ओर रवाना हुए। संचार व्यवस्था नहीं थी इस लिए मुझे लेह से केलंग, केलंग से मनाली तक फौजियों के डाक व्यवस्था की ज़िम्मेदारी दी गई और केलंग में श्री छेरिंग टशी कारपा के दुकान में हेडक्वार्टर बनाया। इस के लिए आठ पत्र वाहक और आठ गधे हर पड़ाव के लिए एक गधा और एक पत्र वाहक 80 रुपये प्रतिमास पर रखा गया, जिन का वेतन गोरखा रेजीमेण्ट की ओर से निश्चित हुआ था। लद्दाख, ज़ंस्कर से कबाइली लुटेरों के डर से भागे लोगों की सूची बनाने तथा कुल्लू तक पहुंचाने की ज़िम्मेवारी मुझे दी गई। कुल्लू में बने शरणार्थी केम्प (आरज़ी तौर पर) के प्रबन्ध में सरकार, स्व. राहुल सांकृत्यायन तथा हिमालयन बुद्धिस्ट सोसायटी के कारकून बी० एस० बौध ने सहयोग दिया। 1949 में एक और गोरखा रेजीमेंट 2/11 मेजर नैनी के कमाण्ड में सितम्बर माह में केलंग से साज़ो सामान सहित लेह के लिए रवाना हुआ। इस रेजीमेंट के साथ मुझे और स्व० पं० बसन्त राम को बतौर गाईड भेजा गया। बसन्त राम जी तो वापिस आ गए परन्तु मुझे दो साल तक वहीं रहना पड़ा, जहां मैंने लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन तथा कुशोग बकुला के साथ मिल कर लद्दाख के विकास और वहां के समाज के उत्थान के लिए कार्य किया और 1951 में करगिल श्रीनगर के रास्ते कुल्लू पहुंचा। कुल्लू पहुंच कर हमें मालूम हुआ कि

हमारे ज्ञापन पर कोई एक्शन नहीं लिया गया है, अतः 20 फरवरी 1951 में लाहुल-स्पीति पीपुल्ज़ एसोसिएशन की एक आपातकालीन बैठक कुल्लू में हुई। हमें मालूम हुआ कि 1935 के एक एक्ट की रूह से संविधान के अन्तर्गत एक्सक्लूडिड एरिया का दर्जा दिया जा रहा है और 1948 में हमें लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करने का जो आश्वासन दिया गया था उस पर अमल नहीं हो रहा है क्यों कि यह आश्वासन सरकार के पत्र संख्या CA/50/CON/-148 dated 31-5-48 जो कि भारत के अंडर सेक्रेटरी की ओर से था। अतः प्रधानमंत्री के पास पुनः बफद भेजने का निर्णय लिया गया, इस में ठाकुर देवी सिंह, श्री टशीदवा घरसंगी तथा मुझे भेजा गया। दिल्ली पहुंच कर हम पुनः सुश्री मृदुला सेराबाई से मिले, उन के माध्यम से नेहरू जी से मिले और उन्हें 1948 में दिए गए आश्वासन की स्मृति दिलाई।

नेहरू जी ने फोन पर डॉ० अम्बेडकर को कुछ कहा ओर सुश्री मृदुला हमें डॉ० अम्बेडकर के पास ले गई और अम्बेडकर जी से लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करने की प्रार्थना की। अम्बेडकर जी ने कहा कि जब संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय हमने दो बार आप लोगों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए बुलाया, तब आप लोग क्यों नहीं आये? हम ने तत्कालीन वस्तुस्थिति से उन्हें अवगत कराया, उन्होंने हम से लाहुल-स्पीति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। हमने वहां की कठिन परिस्थिति, गरीबी, अनपढ़ता और पिछड़ेपन की उन्हें जानकारी दी। इस पर कुछ सोच विचार के बाद डॉ० अम्बेडकर ने सहानुभूति जताते हुए कहा कि वे संविधान के पांचवें शेड्यूल (अनेक्सी) सितम्बर 1950 से भारत सरकार के एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी गज़ट में लाहुल-स्पीति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करवा देंगे और हम ने पुनः अर्ज़ किया कि लाहुल-स्पीति एडवाईज़री कॉन्सिल को जल्दी अमली शक्ल दिया जाए। इस प्रकार लाहुल-स्पीति जो पंजाब का एक भाग था, को जन जातीय क्षेत्र घोषित किया गया तथा इस के अन्तर्गत इस क्षेत्र में ट्राईब्ज़ एडवायज़री कॉन्सिल की स्थापना 1952 में करा दी गई जिस में 2/3 सदस्यों का चुनाव लोग करते थे और 1/3 सरकार नामज़द करती थी। उस समय यह कॉसिल बहुत प्रभावशाली संस्था थी। इस प्रकार जनजातीय क्षेत्र की घोषणा के बाद इस इलाके के लोगों को कई सुविधाएं मिली, आरक्षण मिला जिस से लोग प्रगति के पथ पर अग्रसर हुए। इस घाटी में नई चेतना, नई जागृति लाने में इस घोषणा की भूमिका अविस्मरणीय है। ■

(चन्द्रताल के प्रथम अंक से उद्धृत)

इस लेख के प्रायोजक ▶

Grams: Topseed TRADE MARK HST L No. KLS-3

Hari Singh Thakur & Co.

Seed Potato Suppliers,
Apple Growers &
Commission Agents

01902 252478 (Off)
01902 252347 (Res)
98160 22347
98160 32347
94184 12360

Manali-175131 Distt. Kullu HP

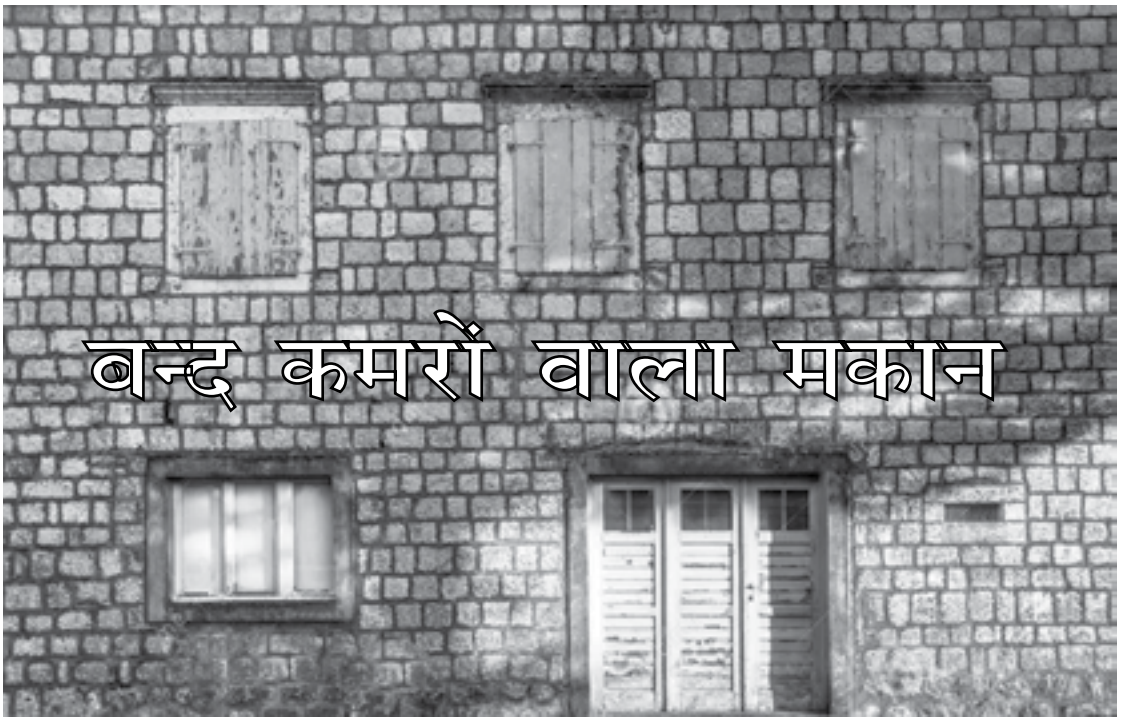

बन्द कमरों वाला मकान

प्रो० सन्तोष शर्मा

चौंकिए नहीं। यह कोई जनहीन घर नहीं है। इसमें भरा-पूरा परिवार बसता है। सुनन्दा की बुआ का लड़का अखिल अपनी पत्नी नीला और पाँच बच्चों के साथ इस घर में रहता है। चार बरस पहले सुनन्दा के पति का स्वर्गवास हो गया था। सुनन्दा के दो बेटे और दो बेटियाँ हैं। सभी की शादियाँ हो गई हैं। बेटियाँ अपनी-अपनी ससुराल में हैं। उनकी अपनी गृहस्थी है। अपने-अपने ससुराल में वे भली भांति अपने दायित्वों का निर्वाह कर रही हैं। प्रसन्न हैं। फोन पर रोज़ माँ से बात कर लेती हैं। कुशल-क्षेम पूछ लेती हैं। यदा-कदा एक दो दिन के लिए बारी-बारी आती-जाती भी रहती हैं। सुनन्दा इससे ज़्यादा उनसे अपेक्षा भी नहीं करती।

दो बेटे हैं। दोनों ही विदेश में सैटल हो गए। साल भर पहले ही। वह अब नितान्त अकेली है। बड़ा सा घर काटने को दौड़ता है। पास पड़ोस के लोग अक्सर आते जाते रहते हैं। परन्तु इससे सुनन्दा का खालीपन तो नहीं भरता न। बेटों का फोन भी आता रहता है। लगभग दूसरे तीसरे दिन सब से बात हो जाती है। एक दिन बड़े बेटे का फोन आया माँ तुम यहीं आ जाओ। मैं यहां अच्छी तरह सैटल हो गया हूँ। बस तुम्हारी चिंता रहती है। वहां तुम अकेली हो। यहीं चली आओ। सुनन्दा ने दो चार बार तो मना किया। बेटा मैं यहीं ठीक हूँ। सब लोग आस-पास हैं। वह बोला माँ लोगों के भरोसे कब तक तुम्हें छोडूं? आखिर सुनन्दा ने मन बना लिया। यह जानते हुए भी कि बहू को उसका वहाँ आना अच्छा नहीं लगेगा। बेटा भी विवश है। माँ के ममत्व और सामाजिक दबाव के आगे। माँ की ममता को शायद वह इग्नोर कर भी देता परन्तु समाज का क्या करे?

आखिर सुनन्दा ने सामान बांधना प्रारंभ कर दिया। अपना तो उसका सामान अधिक नहीं था। बेटे, बहू और बच्चों के लिए ढेर सारी चीज़ें इकट्ठी कर ली और सामान बांध कर तैयार हो गई कनाडा जाने के लिए। कनाडा में ही छोटा बेटा भी रहता था। उसकी अभी-अभी शादी हुई थी। बच्चे नहीं थे। अतः उन दोनों के लिए भी कुछ उपहार रख लिए। जब आएंगे उन्हें देने के लिए। बेटों के पास जाने से पहले वह अखिल (सुनन्दा की बुआ का लड़का) के घर मिलने गई। अखिल एक बड़ी कम्पनी में मैनेजिंग डायरेक्टर है। उसके पाँच बच्चे हैं तीन बेटियां और दो बेटे। एक सबसे बड़ी बेटी की शादी हो गई है। वह अपने परिवार के साथ बम्बई में रहती है। शेष अभी छोटे हैं पर उनमें से दो शादी लायक हैं।

अखिल का परिवार करीब बीस वर्षों से हैदराबाद में सैटल है। अखिल का घर बहुत बड़ा है। एक आलीशान महल सा लगता है। घर में कुल आठ शयन कक्ष हैं। ऊपर नीचे दो मंज़िला घर है। ड्राइंग रूम, किचन और दो शयनकक्ष नीचे हैं। शेष सभी ऊपर हैं सोने सभी ऊपर जाते हैं। नीचे के दो कमरों में से एक में घर पर रहने वाली घर की सारी ज़िम्मेदारी जिस पर है वह नौकरानी रहती है। दूसरा खाली है। कुछ साल पहले तक बुआजी उसमें रहती थी। उन्हें सीढ़ियाँ चढ़ने में तकलीफ होती थी। अब यह शयन कक्ष अतिथियों

के लिए सुरक्षित है। ऊपर के छह कमरों में से पाँच बच्चों के हैं। एक में अखिल और उसकी पत्नी रहते हैं।

सुनन्दा अखिल की बेटी की शादी में पाँच साल पहले आई थी। तब बुआ जी जीवित थी। सुनन्दा अपने पति सहित शादी में शामिल होने आई थी। बुआ अपनी भतीजी से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई बोली भाई भाभी की एक ही तो निशानी है। सुनन्दा अपने माता-पिता की इकलौती सन्तान थी। इधर अखिल भी अपने माता-पिता का अकेला ही वारिस था। अतः सुनन्दा और अखिल बचपन से ही एक दूसरे के बहुत करीब थे। सगे भाई बहन जैसा प्यार था उनमें। जब वह अपनी माँ के साथ अपने मामा-मामी के यहाँ जाता तो दोनों भाई-बहन खूब खेलते। जी भर कर ढेर सारी बातें करते। बातों का सिलसिला शुरू होता तो फिर उन्हें दीन दुनिया की खबर ही नहीं रहती थी। खाना सोना सभी कुछ भूल जाते। सुनन्दा अपने कालेज की सहेलियों की बातें करती। अखिल अपने दोस्तों के बारे में बातें करता। जब अलग होने का समय आता तो दोनों की आंखें भीग जाती थी। उन दोनों को देखकर बड़े भी भावुक हो उठते थे।

समय धीरे-धीरे सरकता रहा। दोनों की शादियां हो गई। बच्चे हो गए। बच्चे भी चार और पाँच। तो कभी उन्हें अकेलापन नहीं लगा जो अखिल और सुनन्दा को लगता था। यदा-कदा अखिल का मामा के निमन्त्रण पर पाँच दस दिन के लिए जाना होता परन्तु सब कुछ औपचारिक सा ही रहता। भाव विभोर करने वाला यह दृश्य कभी नहीं होता था जो अखिल और सुनन्दा के साथ होता था।

सुनन्दा के पति के छह महीने बाद ही बुआजी चल बसी। सुनन्दा उस अवसर पर गई। साथ में छोटा बेटा गया था। सुनन्दा ने अभी-अभी एक सदमा सहा था। इस सदमे से उबरी भी नहीं थी कि माँ तुल्य बुआ भी छोड़ गई। बस सभी कुछ खाली-खाली सा लगने लगा। तेरहवीं के बाद सभी एक-एक कर जाने लगे। सुनन्दा भी भारी मन से लौट आई।

आज साढ़े तीन साल बीत गए। अपना घर छोड़ कर विदेश जाने की व्यवस्था से उसका मन भारी हो गया था। सोचा जाने से पहले अखिल और उसके परिवार से मिलती चलूं। फोन किया। अखिल ने उठाया। प्रणाम दीदी! कैसी हो? तुम सब कैसे हो? हम सब ठीक हैं दीदी। बस अपने-अपने काम में व्यस्त। अखिल मैं कल शाम की गाड़ी से हैदराबाद पहुँच रही हूँ। विमल का फोन आया था तो उसी के पास जाने की तैयारी कर रही थी सोचा जाने से पहले तुम से और बच्चों से मिलती चलूँ। यह तो आपने अच्छा सोचा दीदी। ज़रूर आइए कल स्टेशन पर गाड़ी भेज दूंगा। फिर मिलते हैं। कहकर उसने फोन रख दिया। सुनन्दा ने सोचा इतनी बड़ी कम्पनी में डायरेक्टर है। जल्दी में होगा।

अगले दिन ट्रेन निर्धारित समय से एक घंटा लेट सवा आठ बजे शाम को पहुँची। जैसे ही ट्रेन रुकी तीन चार कुली डिब्बे के अन्दर आ पहुँचे। लोग अपना-अपना सामान समेटने लगे। जिन्होंने आगे जाना था, वे निश्चिंत बैठे थे। तब तक एक कुली ने पास आकर पूछा मैडम कुली चाहिए। सुनन्दा ने हां संक्षिप्त सा उत्तर दिया और अपनी अटैची की ओर संकेत करते हुए कहा इसे उठा लो परन्तु धीरे-धीरे चलना। आगे-आगे जल्दी मत करना। वह बोला नहीं बीबी जी साथ-साथ चलूंगा आप आराम से उतरिए। डिब्बे से उतर कर ज्यों ही कुछ दूर चली सामने से अखिल का ड्राइवर आता दिखाई दिया। वह पिछले दस सालों से अखिल के यहां काम कर रहा है। अतः पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई। उसने अभिवादन किया और कुली से अटैची पकड़ ली। सुनन्दा ने उसका हालचाल पूछा, कुली को पचास रुपये दिए और आगे बढ़ गई। कुली ने चालीस रुपये मांगे थे। उसे वह बड़ा ही भला और नेक इन्सान लगा। सुनन्दा ने दस रुपये वापिस न लेते हुए कहा बस रहने दो तुमने अच्छे से सामान पहुँचा दिया इतना ही काफी है। वरना तेज़-तेज़ भागने में बड़ी परेशानी होती है। जाने क्यों उसकी भोली आंखें तरल हो उठीं वह अभिवादन करता हुआ एक दम से दूसरी तरफ बढ़ गया। सुनन्दा उसकी आंखों की सजलता का कारण जानना चाहती थी परन्तु उसने अवसर ही नहीं दिया। आज भी वे भीगी आंखें उसे भीतर तक छू जाती हैं।

कार सड़क पर दौड़ रही थी। राम खेलावन (ड्राइवर) स्टीयरिंग व्हील को पकड़े बड़ी सतर्कता से गाड़ी चला रहा था। वह अभी-भी भीगी आंखों की बेबसी खोजने में व्यस्त थी। चुप्पी तोड़ते हुए राम खेलावन बोला बुआ जी इस बार तो आप बहुत दिनों बाद आई हैं। राम खेलावन बहुत छोटी उम्र में ही अखिल के पास आ गया था। अतः बच्चों के साथ वह भी बुआ जी ही कहता था। सुनन्दा अभी भी अपने विचारों में खोयी हुई थी। कोई उत्तर नहीं दिया। देर के लिए पुनः चुप्पी व्याप गई। ड्राइवर ने थोड़ी देर बाद फिर वही प्रश्न दोहराया। इस बार सुनन्दा ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया हां बस ऐसे ही। फिर दोनों चुप हो गए। थोड़ी देर बाद ड्राइवर ने कहा लीजिए बुआ जी घर आ गया। इस वाक्य ने सुनन्दा को पूरी तरह सचेत कर दिया। गाड़ी रुक चुकी थी। अपनी साड़ी संभालती हुई सुनन्दा कार से उतरने लगी। ड्राइवर ने दरवाज़ा खोला। नीचे उतरा। सुनन्दा का दरवाज़ा खोलने को लपका तब तक सुनन्दा स्वयं ही दरवाज़ा खोलकर नीचे उतर गई थी। वह बड़ी उतावली-सी द्वार की ओर बढ़ रही थी। पीछे-पीछे ड्राइवर अटैची उठाए चला आ रहा था। कुछ ही कदम पर घर का मुख्य द्वार था। सुनन्दा ने डोरबेल बजाई और बड़ी उत्सुकता से भीतर से आने वाले की प्रतीक्षा करने लगी। दो-तीन मिनट बाद दरवाज़ा खुला और एक अधेड़ सी महिला ने अभिवादन किया और दोनों हाथों से भीतर आने का आग्रह किया।

सुनन्दा की आंखें अखिल और नीला (अखिल की पत्नी) को ढूंढ रही थी। वह ड्राइंगरूम तक पहुँची तभी उस अधेड़ महिला (तारामती जो पिछले 15-20 सालों से उनके यहाँ काम करती है) ने सोफे की तरफ इशारा करते हुए बैठने का आग्रह किया और बोली आप बैठिए मैं पानी लाती हूँ। और हां राम खेलावन तुम इनका सामान बड़ी माँ जी (सुनन्दा की बुआ जी) के कमरे में रख दो। सुनन्दा बिना किसी प्रतिवाद के सोफे में धंस गई और सोचने लगी इतना बड़ा परिवार है परन्तु घर में कैसा सन्नाटा पसरा पड़ा है। उसके मन में न जाने कितने अच्छे बुरे विचार एक साथ घुमड़ने लगे। तभी तारामती पानी का गिलास लेकर आ गई और बोली मैं चाय बनाती हूँ तब तक आप हाथ मुँह धो लीजिए, इसके बाद रात के खाने के समय तक साहब और बीबी जी भी आ जाएंगे। सुनन्दा ने सोचा शायद कहीं बाहर गए होंगे और थोड़ी देर में आ जाएंगे। सुनन्दा अभी उठकर खड़ी ही हुई थी कि तब तक अखिल और नीला सीढ़ियों से उतरते दिखाई दिए।

दोनों ने बड़ी आत्मीयता, स्नेह और सम्मान के साथ सुनन्दा का अभिवादन एवं स्वागत किया। उन्हें देखते ही सुनन्दा की सारी थकान दूर हो गई। उन्हें आलिंगन में लेकर ढेरों आशीर्वाद दिए और बोली तारामती तो कह रही थी कि आप लोग खाने के समय तक आ जाओगे, मैंने सोचा कहीं बाहर गए हों। नहीं दीदी बहुत थक गया था थोड़ा आराम करने ऊपर चला गया था। अक्सर जब इस समय आराम करने जाता हूँ तो खाने के समय पर ही नीचे उतरता हूँ। आपकी आवाज़ सुनी तो झट से आ गया। जाओ तारामती जल्दी से हम सब के लिए चाय ले आओ, साथ में हल्का सा कुछ खाने का भी ले आना। नहीं, नहीं अखिल केवल चाय ठीक रहेगी वर्ना रात का खाना नहीं खाया जाएगा।

बातों का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए सुनन्दा ने पूछा नीला बच्चे कहाँ हैं? नज़र नहीं आ रहे। नीला इस प्रश्न के लिए जैसे पहले से ही तैयार बैठी थी बोली दीदी बच्चे अब बड़े हो गए हैं उनकी अपनी दुनियां है। हम तो बस कभी कभार आते-जाते ही देख लेते हैं वर्ना कौन कब आता है, कब जाता है पता ही नहीं चलता सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। सुबोध की नाइट शिफ्ट होती है। विकास ग्यारह साढ़े ग्यारह बजे आएगा। तब तक हम सो चुके होंगे क्योंकि हमें भी साढ़े-सात पौने आठ के करीब निकलना होता है (नीला भी एक बैंक में ब्रांच मैनेजर है)। कलिका और ऋतु भी अभी-अभी मल्टी नेशनल कम्पनियों में लगी हैं, दोनों के आफिस पास-पास हैं अतः इकट्ठी चली जाती हैं और वे अभी नौ साढ़े नौ तक पहुँच जाएंगी।

तारामती चाय लेकर आ गई थी। ट्रे में तीन कप चाय के थे साथ में बिस्कुट और नमकीन भी रख लाई थी। हमने चाय पी। दीदी आप नहाना चाहें तो नहा लें तब तक खाना तैयार हो जाएगा। सुनन्दा उठी। नीला भी साथ उठकर खड़ी हो गई। झट से कमरे में गई एक स्वच्छ तौलिया लेकर आई और सुनन्दा की तरफ बढ़ाती हुई बोली दीदी इधर बाथरूम है।

सुनन्दा नहाकर निकली। टेबल पर खाना लगा हुआ था। तारामती ने कई तरह की सब्ज़ियां, चटनी, रायता, दाल, चावल सभी करीने से मेज़ पर सजा दिए थे। अखिल और नीला बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। सुनन्दा ने कहा कलिका और रितु की प्रतीक्षा कर लें। अखिल और नीला दोनों एक साथ ही बोल उठे दीदी उनका कुछ पता नहीं बाहर कुछ खाकर आएंगी तो नहीं खाएंगी। आइए, हम खाना खाते हैं। सबने बैठ कर खाना खाया और हल्की-फुल्की बातचीत भी होती रही।

खाना खत्म हो चुका था। करीब आधा घंटा बीत चुका था। रात के साढ़े नौ बज चुके थे। अखिल उठा और बोला दीदी मैं जरा अपना काम निपटा लूं। काम निपटाते हुए ग्यारह तो बज ही जाएंगे। अखिल अपने कमरे में चला गया नीला और सुनन्दा बैठी रहीं। दोनों बातें करती रहीं। बातें करते-करते सवा ग्यारह बज गए। बच्चों का कहीं पता नहीं था। नीला जाने के लिए उठी बोली दीदी आप भी थकी होंगी मुझे भी सुबह साढ़े सात बजे निकलना है। सुनन्दा ने पूछ ही लिया बच्चों के आने का इंतज़ार नहीं करोगी। दीदी उनका क्या पता कब आएंगे। आएंगे भी या बाहर ही कहीं रुकना पड़ जाए। इस बार उत्तर देते हुए उसकी आवाज़ थोड़ी भर्राई हुई थी। आंखों में बेबस निरीहता थी। वह बिना रुके भारी कदमों से आगे बढ़ गई। सुनन्दा ने उसे रोकना उचित नहीं समझा और फिर स्वयं भी उठकर अपने कमरे में चली गई।

उसे नींद नहीं आ रही थी। बदलते युग की समीक्षा कर रही थी। नीला का घर कीमती साज़ो सामान से भरा पड़ा था। नीला ने बताया हर कमरे में फोन, टी.वी. और सब के निजी कम्प्यूटर हैं। रात काफी बीत चुकी थी। वह करवटें बदल रही थी। तभी बाहर कुछ हलचल सी हुई। धीमी-धीमी पगाहट सुनाई दी और धीरे-धीरे वह दूर होती गई। शायद कोई सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर गया था। घड़ी देखी ढाई बजे थे। लेटे-लेटे थोड़ी झपकी सी आने लगी। तभी फिर एक पगाहट ने सन्नाटे को कुछ क्षणों के लिए तोड़ा और फिर सब कुछ यथावत सन्नाटे के आगोश में समा गया।

वह अपनी आदत के अनुसार प्रातः पांच बजे उठी। नहा धो कर पाठ पूजा करके अपने कमरे में बैठी थी कि किसी ने द्वार खटखटाया। घड़ी देखी साढ़े छह बज गए थे। सुनन्दा ने कहा आ जाओ दरवाज़ा खुला है और तारामती ट्रे में चाय बिस्कुट लिए अंदर आ गई। बाकी सब अभी सो रहे हैं क्या उसने तारामती से पूछा। जी हाँ संक्षिप्त सा उत्तर देकर उसने चाय की ट्रे पलंग के पास रखे स्टूल पर रख दी और बोली आप नाश्ते में क्या लेंगी। कुछ

भी जो सब के लिए बनाओगी वही ले लूंगी। यहाँ तो सब के लिए अलग-अलग ही बनता है कोई पराँठा लेगा, किसी को दलिया पसंद है, तो कोई केवल दूध का कप, किसी को टोस्ट और चाय चाहिए। बस-बस मुझे तो केवल एक पराँठा ही सेक देना। जल्दी नहीं है जब सबके लिए बनाओ तभी बना देना। उसकी लिस्ट को बीच में ही काटते हुए सुनन्दा ने कहा। जी अच्छा। संक्षिप्त सा उत्तर देकर वह बाहर चली गई।

सुबह के साढ़े आठ बज रहे थे। अखिल और नीला सीढ़ियों से नीचे उतरे। नहा धोकर तैयार होकर आए थे। तारामती ने टेबल पर नाश्ता सजाया हुआ था। एक बाउल में फल कटे रखे थे। एक प्लेट में कुछ टोस्ट, चाय, दूध और पराँठे सभी कुछ बना रखा था। तीनों ने बैठकर नाश्ता करना शुरू किया। सब चुपचाप थे। चुप्पी तोड़ते हुए अखिल बोला दीदी नींद अच्छी आ गई थी। हाँ आ गई थी। नीला तो रात मेरे कारण काफी लेट हो गई थी। नहीं दीदी इतना तो रोज़ होता ही है। घर पर आकर भी कुछ काम तो निपटाना ही होता है आफिस का। फिर ये भी तो आधी फाइलें घर पर ही निपटाते हैं। हमारा आफिस और घर में ज़्यादा अन्तर नहीं है। इस पर तीनों हल्का सा हंस दिए। अखिल नाश्ता खत्म कर के खड़ा हो गया। नीला भी उठ खड़ी हुई दीदी हम लेट हो रहे हैं। चलते हैं शाम को मिलते हैं। कहते-कहते वे बाहर की ओर बढ़ने लगे। सुनन्दा भी उठ खड़ी हुई। दीदी आप प्लीज़ आराम से खाइए हम लेट हो रहे हैं। तारामती दोपहर को दीदी को जो खाना हो बना देना। और हाँ दीदी कुछ मंगाना हो तो राम खेलावन को वापिस भेज देंगे। वह अभी डेढ़ दो घंटे में आ जाएगा। नहीं नहीं तुम आराम से जाओ इसे भी अपने पास ही रखो मुझे कहीं नहीं जाना है। मैं तो बस घर पर ही आराम करूंगी।

सुनन्दा अपने कमरे में चली गई। सुबह के ग्यारह बज गए। कमरे में बैठे-बैठे मन उकताने लगा। बाहर झांक कर देखा तारामती अपने काम में व्यस्त थी। उसने सुनन्दा की ओर देखा बोली बुआजी चाय पानी कुछ लाऊँ? बस ऐसे ही लेटे-लेटे थक गई थी। सुनन्दा ने इतना कहते-कहते ही देखा कि ऊपर से कलिका उतरी सुनन्दा को देखते ही बोली बुआजी आप कब आईं, आइए बैठिए, और सुनाइए घर पर सब कैसे हैं? आदि आदि कई प्रश्न एक साथ पूछ लिए। सुनन्दा ने कमरे से बाहर आते हुए कहा मैं रात ही आई थी बेटा और तुम सुनाओ कैसी हो? बस बुआजी नाइट-शिफ्ट थी। रात लेट हो गई अभी एक दोस्त के यहाँ जाना है। इसीलिए जल्दी में हूँ। इतना कहते हुए तारामती को संबोधित करते हुए बोली तारामती मैं ब्रेकफास्ट वहीं लूंगी शाम को वहीं से आफिस चली जाऊंगी मम्मा को बता देना। अच्छा बुआजी कल मिलते हैं कहते कहते वह दरवाज़े से बाहर हो गई और सन्नाटा फिर से पूरे वातावरण में पसर गया।

पूरे दिन घर पर बस सुनन्दा और तारामती थे। तारामती को बरसों से इसकी आदत पड़ गई थी। अपना काम निपटा कर वह सुनन्दा के पास आई और बोली बुआजी दोपहर को खाने के लिए क्या बनाऊँ? नाश्ता खाकर कमरे में ही बैठी थी खाने को बिल्कुल भी मन नहीं था। अतः मना कर दिया। वह बोली थोड़ा कुछ ले लीजिए सुनन्दा ने कहा भूख नहीं है और पुनः लेट गई और तारामती भी अपने कमरे में आराम करने चली गई। लेटे लेटे कब आँख लग गई पता ही नहीं चला। सोकर उठी घड़ी में देखा सवा तीन बज रहे थे। बाहर टी.वी. चल रहा था। सुनन्दा बाहर आ गई। तारामती ड्राइंग रूम में बैठी टी.वी. देख रही थी। उसे देखते ही बोली बुआजी चाय पानी कुछ लाऊँ? सुनन्दा ने कहा हाँ एक गिलास पानी ही दे दो चाय तो शाम को अखिल और नीला के साथ ही पी लूंगी। बार-बार चाय पीने से मुझे एसिडिटी हो जाती है। शाम साढ़े पाँच बज गए थे, टी.वी. के सामने बैठे-बैठे भी थकान होने लगी थी। तभी घंटी बजी तारामती बीबीजी आ गई कहकर दरवाज़ा खोलने चली गई। अखिल और नीला दोनों ही आ गए थे। उन्होंने हाथ मुँह धोया कपड़े बदले तब तक तारामती ने टेबल पर चाय नाश्ता रख दिया। तीनों चाय पीने बैठे। अखिल बोला दीदी क्या करें हमारी तो लाइफ ही ऐसी है। तभी लगभग बीच में ही नीला बोल पड़ी दीदी आज तो ये आपके कारण इस टाइम आ गए हैं नहीं तो डिनर पर भी बामुश्किल ही आ पाते हैं। अक्सर तो फोन ही आ जाता है तुम खाना खा लेना मैं मीटिंग में बिज़ी हूँ बाद में यहीं डिनर भी है। कहकर नीला मुस्करा दी अखिल भी मुस्करा दिया और बोला दीदी क्या करूं जॉब ही ऐसी है तो ये सब करना ही पड़ता है। सुनन्दा ने उन दोनों की विवशता को भाँपते हुए कहा हाँ हाँ आजकल की ज़िन्दगी भागदौड़ भरी है ही और फिर कम्पीटीशन भी बहुत है तो ये सब तो होगा ही।

सबकी चाय समाप्त हो गई थी। नीला और सुनन्दा सोफे पर आकर बैठ गए और अखिल अपनी फाइलों में उलझ गया। नीला और सुनन्दा बातें करते रहे समय का पता ही नहीं चला। तारामती ने बताया खाना तैयार है। घड़ी देखी साढ़े नौ बज गए थे। नीला ने अखिल को बुलाया। तीनों ने बैठकर खाना खाया। पास ही टी.वी. चल रहा था और बीच-बीच में इधर-उधर की बातें भी चलती रही लगभग सवा दस बजे खाने की टेबल पर से सब उठे और अपने अपने कमरों में चले गए। उन दोनों को सुबह फिर से काम पर जो जाना था।

यहाँ आए चार दिन बीत गए। कल सुबह की गाड़ी से वापिसी है। रोज़ लगभग यही दिनचर्या रही। चार दिन में एक बार भी परिवार को एक साथ नहीं देखा। परिवार के कुछ एक सदस्यों से तो मिलना भी नहीं हुआ। इन्हीं सब विचारों में खोई वह सो गई।

सुबह जल्दी उठना था। साढ़े छः बजे की ट्रेन से वापिसी थी। घर से साढ़े पाँच बजे निकलना था।

वह सुबह साढ़े चार बजे उठी। नहा धोकर सवा पाँच बजे तैयार हो कर बैठ गई। तारामती ने चाय बना दी। इतनी सुबह कुछ खाने को मन नहीं था अतः दो बिस्कुट और चाय का कप ले लिया। तभी नीला एक पैकेट हाथ में लिए उसके पास आई और बोली दीदी यह छोटा सा उपहार आपके लिए।

इतना कहते कहते उसका गला भर आया। सुनन्दा की भी आँखें नम हो गईं। शब्दों में न उसने कुछ कहा न सुनन्दा ने। परन्तु आँखों ने आँखों की भाषा पढ़ ली थी। वह सुनन्दा से लिपट गई सुनन्दा ने उसे गले से लगा लिया और कहा नीला तुम्हारे इस स्नेह और सम्मान से बड़ा और कोई उपहार हो सकता है क्या?

तभी अखिल सीढ़ियों से उतरा और बोला दीदी आप के पास बैठने का समय ही नहीं मिला और आप का जाने का समय भी हो गया। तभी किसी ने डोर बेल बजाई। तारामती ने दरवाज़ा खोला। ड्राइवर आ गया था। अखिल ने ड्राइवर से सामान उठाने के लिए कहा।

सुनन्दा ने तारामती को कुछ पैसे दिए। उसने बड़े स्नेह से उसकी ओर देखा और अभिवादन कर एक ओर खड़ी हो गई। अखिल, नीला और सुनन्दा तीनों कार में बैठ गए और ड्राइवर ने कार स्टार्ट कर दी। रास्ते में विशेष बातचीत नहीं हुई। सभी भावाकुल और मौन थे। कुछ देर में कार रेलवे स्टेशन पहुँच गई। वहाँ पहुँच कर पता चला गाड़ी एक घंटा लेट है। अखिल तीन कॉफी ले आया। तीनों ने कॉफी पी। बातचीत करते रहे। पचास मिनट बीत गए तभी घोषणा हुई कि हैदराबाद से दिल्ली जाने वाली राजधानी एक्सप्रैस कुछ ही मिनट में प्लेटफार्म नं. दो पर पहुँच रही है।

ट्रेन पहुँचते ही एक कुली ने सामान अन्दर रखा। सुनन्दा ने उन दोनों को प्यार से गले लगाया और कहा ऊपर मत चढ़ना ट्रेन पहले ही लेट है एकदम चल पड़ेगी। इसलिए नीचे ही रहो और वह भारी मन और धीमी चाल से डिब्बे की ओर बढ़ी। अन्दर जाकर निर्धारित सीट पर बैट गई। तभी ट्रेन की सीटी बज गई। ट्रेन के हरकत में आते ही उतरने चढ़ने वाले यात्रियों में भगदड़ सी मच गई। उसने नीला और अखिल की ओर देखा। दोनों ने हाथ हिलाकर एक दूसरे से विदा ली।

धीरे-धीरे ट्रेन आगे बढ़ने लगी। प्लेटफार्म पीछे छूटने लगा। हवा में लहराते अनेक हाथ अपने-अपने संबंधियों, परिचितों, मित्रों को विदा दे रहे थे। एकाएक ट्रेन ने रफ्तार पकड़ी। सुनन्दा ने हाथ अन्दर कर लिया। साथ ही भावों को हृदय में भर लिया और लौट चली मकान से अपने घर की ओर। ■

सेक्टर 37ए, चंडीगढ़।

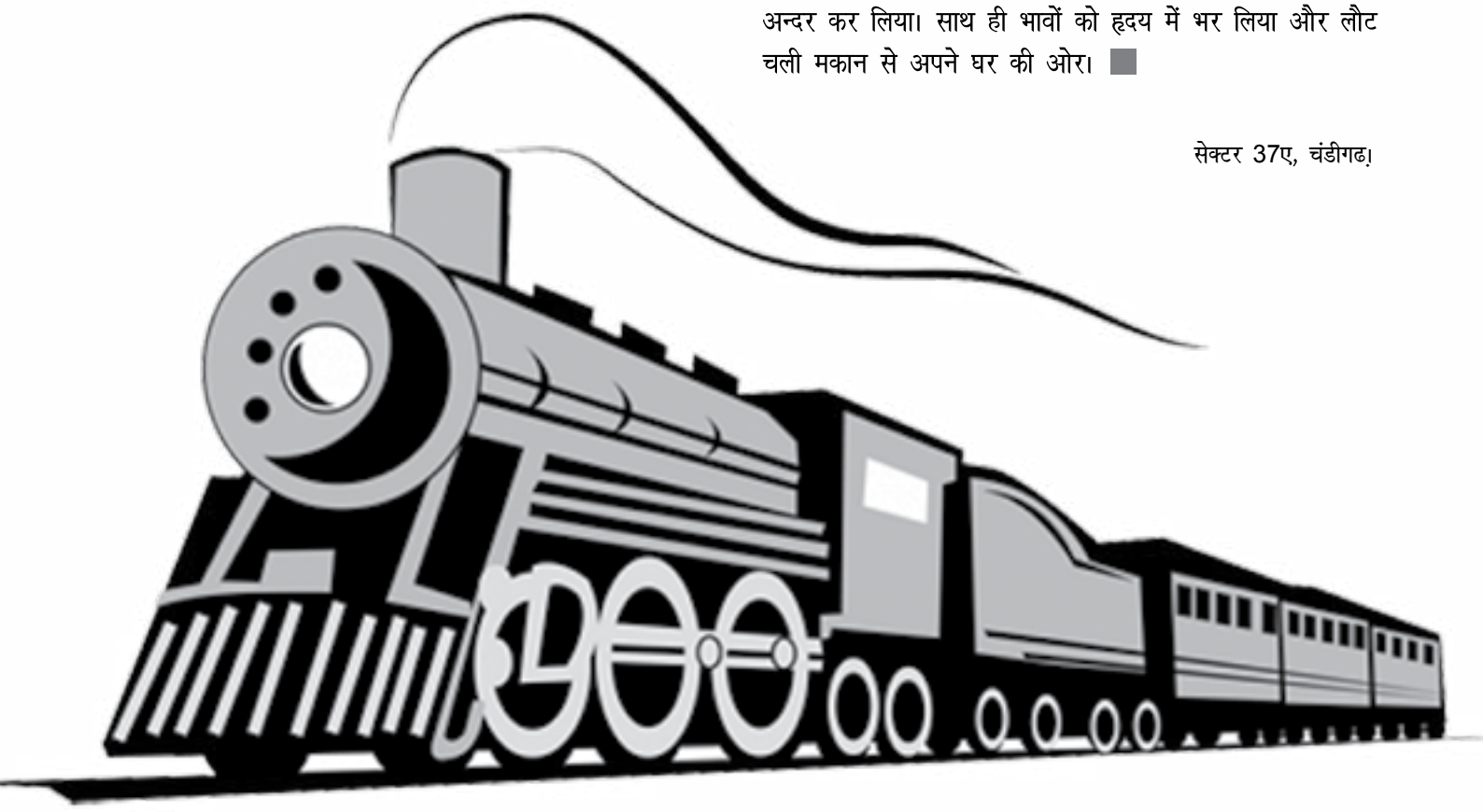

कैता माया राम की आत्महत्या, एक ऐतिहासिक घटना

स्व. के. अंगरूप लाहुली

आदिवासी क्षेत्र लाहुल का अब तक कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतः उस क्षेत्र के अतीत की कतिपय स्मृतियों को हम केवल वहां के लोक-गीतों, लोक-गाथाओं तथा जनश्रुतियों के माध्यम से कुछ जान सकते हैं। क्योंकि लोक-गाथा आदि मौखिक साहित्य में स्थानीय इतिहास की सामग्री भरपूर रहती है। इस प्रकार इसके अनुशीलन से विलुप्त एवं विस्मृत इतिहास पर किंचित प्रकाश पड़ सकता है। निम्न लोक-गाथा लाहुल क्षेत्र के पटन वादी के झुण्डा नामक गाँव के रहने वाले कैता माया राम का जीवन-वृत्त है। माया राम झुण्डा गाँव के एक सम्मानित व्यक्ति थे। यद्यपि उन का घर और परिवार बड़ा नहीं था, परन्तु वे स्वयं में हृदय का विशाल एवं एक सद्-चरित्र पुरुष थे। अतः गाँव के लोग उन का बड़ा सम्मान करते थे। गाँव की सारी व्यवस्था उनकी नीति और संकेतों पर चलती थी। इस लिए प्रशासन की ओर से नियुक्त राज-पुरुषों को माया राम का व्यक्तित्व और उनकी साख खलती थी। अतः उन विद्वेषी एवं छिद्रान्वेषी अधिकारियों ने धीरे-धीरे माया राम के विरुद्ध कुल्लू राज दरबार और स्वयं राजा प्रीतम सिंह के कान भर दिए थे। फलस्वरूप राजा प्रीतम सिंह माया राम से रुष्ट हो गए और उन पर राज द्रोह का आरोप लगाकर उन्हें गर्मी के दिनों (जब कुल्लू की भूमि आग की भांति तपने लगती हैं, उस समय) कुल्लू राज-दरबार में उपस्थित होने के लिए परवाना जारी कर दिया। परवाना यानी आज्ञा-पत्र में कौन-कौन सी बातें लिखी थीं, यह तो प्रस्तुत लोक-गाथा से बहुत स्पष्ट नहीं होता, परन्तु उस राज-आज्ञा को प्राप्त करने के पश्चात् माया राम ने जो दौड़-धूप की, उस से प्रतीत होता है कि राज-आज्ञा में निस्सन्देह उनके विरुद्ध भयंकर आरोप था। इसी लिए तो स्वाभिमानी माया राम ने कुल्लू राज-दरबार में उपस्थित होने की अपेक्षा अपने आप को समाप्त कर देना अधिक श्रेष्टकर समझा। ये सभी बातें तो प्रस्तुत लोक-गाथा से स्पष्ट होती ही हैं। इन के अतिरिक्त लाहुल पर चीनी तुर्किस्तान के खानाबदोशों द्वारा आक्रमण करना, सिंग यानी सिखों द्वारा 6 वर्ष (1840-1846) तक अत्याचार करना तथा कुल्लू के सामन्ती परिवारों द्वारा लाहुल की निरीह जनता पर अन्याय ढाहना आदि बातें वहां की दन्तकथाओं से उद्घाटित होती हैं।

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि लाहुल पर कुल्लू राज परिवारों ने 11वीं से लेकर 19वीं शती के प्रथम चरण तक कभी स्थायी और कभी अस्थायी रूप से अधिकार किए थे, तो उस समय कैता माया राम ने आत्महत्या की थी। उस वीर पुरुष कैता माया राम की अमर कहानी यानी लोक-गाथा का आशय निम्न प्रकार है -

1. राजा प्रीतमारा कागुता आई ओ।

एक समय की बात है कि कुल्लू राजवंश के राजा प्रीतम सिंह का हुक्कम-नामा लाहुल आया अर्थात् पहुंचा।

2. ऐसो कागुताए मैया रामा ताही ओ।

वह हुक्कम-नामा पटनवादी के झुण्डा निवासी कैता परिवार के श्री माया राम के लिए (=नाम) था।

3. एकीन ध्याड़ीए ढोबे द्वाड़े पहुँची ओ।

उस समय लाहुल और कुल्लू के मध्य यातायात का कोई साधन नहीं था। अतः लोग पैदल ही आते-जाते थे। इस प्रकार पत्र वाहक कुल्लू राज-दरबार से पत्र लेकर प्रथम दिन ढोबी-द्वाड़ा पहुँचा

4. दूजी न ध्याड़ीए मुनाड़ी कोठी ओ।
5. त्रिजी न ध्याड़ीए जोत लंघाय ओ।
6. चौथे न ध्याड़ीए खोगसरा पहुँची ओ।
7. पन्जु न ध्याड़ीए सीसुए पहुँची ओ।
8. छेओ न ध्याड़ीए गुन्धुलेरा कोठी ओ।
9. सातू न ध्याड़ीए तान्दीरा कोठी ओ।

वह वहाँ से चल कर दूसरे दिन सदर-मकाम मनाली पहुँचा। तीसरे दिन उसने जोत यानी रटांग दर्रे को पार किया। चौथे दिन वह खोग-सर गाँव पहुँचा। पाँचवें दिन सीसू पहुँचा। छठवें दिन वह गोंधला पड़ाव पर पहुँचा तथा सातवें दिन वह तन्दी मुख्यालय पहुँच गया।

10. तान्दी-रा कोठीए त्रिजी कामुदारा ओ।

उन दिनों कुल्लू प्रशासन की ओर से राजस्व प्राप्त करने तथा कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए तात्कालीन तन्दी मुख्यालय में तीन राज्य कर्मचारी नियुक्त होते थे। जिन में एक हाकिम (=बज़ीर), एक अधिकारी तथा एक कानूनगो होता था।

11. जोड़ी-ता हजूरीए, कीजी कामे आई ओ।

पत्र वाहक उन अधिकारियों के सम्मुख पहुँच कर तथा हाथ जोड़ कर 'जी, हजूर' आदि दरबारी रसम अदा करने लगा तो राज-शक्ति के मदांध उन अधिकारियों की त्योरी चढ़ गई और वे उस से पूछने लगे कि तुम यहाँ किस काम के लिए आए हो?

12. कैता मैया रामेरीए कागुता आई ओ।

इस पर पत्र वाहक राज-पत्र को उन अधिकारियों को दिखाते हुए कहने लगा कि झुण्डा निवासी कैता माया राम के नाम यह कागज़ (=हुक्कम-नामा) आया है। मैं इसे ले कर कुल्लू राज-दरबार से आ रहा हूँ।

13. आठूना ध्याड़ीए फूड़ेरा प्रौड़ी ओ।

पत्र वाहक वहाँ से आगे बढ़ा और इस प्रकार वह आठवें दिन फुड़ा नामक गाँव में पहुँच गया।

14. हकुमा पम्बूड़ाए पूछूणी लागी ओ।

फुड़ा गाँव में भी राज्य की ओर से एक हाकिम नियुक्त था। हाकिम जिस का नाम पम्बूड़ा (=पल-बर) था, आदतन अपनी मूछों पर ताव देते हुए बड़े रोब-दाब के साथ पत्र वाहक से पूछने लगा कि तुम यहाँ किस काम के लिए आए हो?

15. हकुमा पम्बूड़ा कागुता बांची ओ।

ऐसो कागुताए मेरे-रा नाहीं ओ।।

इस पर पत्र वाहक अपनी हैसियत जताने के लिए राज-पत्र को हाकिम के सामने रखते हुए कहने लगा कि मैं कुल्लू राज-दरबार का एक कर्मचारी हूँ और राज्य के काम से ही यहाँ आया हूँ। इतने में वह अनाड़ी हाकिम उस मोहर बन्द राज-पत्र को बेधड़क खोल कर पढ़ने लगा और कहने लगा कि यह पत्र तो मेरे लिए नहीं है।

16. कला दौतीए तलजोणी ग्राएँ ओ।

कैता मैया रामए मंजी ऊपरी सोई ओ।।

दूसरे दिन वह पत्र-वाहक क्रमशः तालजोण नामक गाँव पहुँचा। उसके पश्चिम भाग में माया राम का गाँव था। वह वहाँ से आगे बढ़ा और झुण्डा गाँव पहुँच गया। उस समय कैता परिवार का गृह स्वामी श्री माया राम चारपाई पर लेटे आराम कर रहे थे। पत्र-वाहक ने राज पत्र को जब माया राम की और बढ़ाया तो-

17. कैता मैया रामाए कागुता बांची ओ।

कैता माया राम ने राज-पत्र को बड़े आदर मान के साथ अपने दोनों हाथों से धारण किये और उसे सिर-माथे लगा कर गंभीरता पूर्वक पढ़ने लगे।

18. घोड़ी-ता चाढ़ेए फूड़ा जोगु आई ओ।

पत्र को पढ़ने के पश्चात् वे अन्यमनस्क सा हो गए और तुरन्त घोड़े पर चढ़कर हाकिम पम्बूड़ा से सलाह-मशविरा करने फुड़ा गाँव की और चले आए।

19. हकुमा पम्बूड़ा पूछूणी लागी ओ।

तौंसेरी ध्याड़ीए दो गल्ला होई ओ।

माया राम फुड़ा पहुँच कर अभी घोड़े से नीचे उतर भी नहीं पाए थे कि आदत का मारा हाकिम पम्बूड़ा अफ्सरी लहज़े में उन से पूछने लगा - हे माया राम, तुम ने कौन सी बेबकूफी की बात की है? जिस की वजह से राजा तुम से इतना नाराज़ हैं। इस सिलसिले में अब गर्मी के दिनों तुम्हारे खिलाफ कुल्लू राज-दरबार में दो बातें होंगी यानी तुम पर मुकदमा चलेगा। इसके लिए तुम्हें अभी से तैयार रहना होगा। माया राम, हाकिम पल-बर के साथ सलाह-मशविरा करने तथा सहायता माँगने की बात सोच कर चले थे, परन्तु हाकिम के असहयोग पूर्ण व्यवहार से, उन की सारी योजनाएँ धूमिल पड़ गई। अतः वे उसी स्थान से पुनः-

20. घोड़ी-ता चाढ़ेए गोरुमा ग्राएं आई ओ।

कान्हा हकुमाए कागुता बांची ओ।।

घोड़े पर चढ़े और सीधा गोरमा गांव की ओर चले आए। उस समय गोरमा में कान्हा (= कर्ण) नामक एक हाकिम रहता था। चिन्तातुर माया राम ने राज-आज्ञा को उन को दिखाते हुए मार्ग-दर्शन और सहयोग के लिए प्रार्थना की। हाकिम कान्हा ने पत्र को पढ़ कर कहा-

21. तौंसेरी ध्याड़ीए पिता-पाणिरे डारे ओ।

तौंसेरी ध्याड़ीए दो गल्ला होणी ओ।।

इस हुक्कम नामा के मुताबिक तुम पर राज-द्रोह का इलज़ाम है और गर्मी के दिनों जब कुल्लू में पित्त (= पीलिया) और पानी (= बरसात) का बड़ा खतरा रहता है। उन गर्मी के दिनों तुम पर कुल्लू राज-दरबार में मुकदमा चलेगा। हाकिम कान्हा ने अपनी ओर से कहा-हुक्कम नामा जारी हो चुका है, इस लिए अब मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर सकता।

22. कैता माया रामाए घरे जोगु आई ओ।

हाकिम कान्हा का निराशजनक उत्तर सुन कर माया राम व्यथित हो गए, और भीतर ही भीतर उन की आत्मा रोने लगी। उन्हें अब दिशाएँ सुन्न प्रतीत होने लगी। इस प्रकार कैता माया राम वहाँ से पुनः अपने घर की ओर चले आए।

23. कला दौती ध्याड़ी शंशा-रे जातरे ओ।

लोको दुनियांए जातुरू जो आई ओ।।

दूसरे दिन सुबह से शांशा नामक गाँव में एक उत्सव लगना था, अतः सारी दुनियाँ के लोग (= बहुत से लोग) उस उत्सव में भाग लेने के लिए आ रहे थे।

24. कैता माया रामाए जातुरू आई ओ।

ध्याड़ी आधू ध्याड़ी घरे जोगू आई ओ।।

दुःखी-मना कैता माया राम भी अपने दिल बहलाने के लिए उत्सव में तो आए, परन्तु छुरी तले जीवन जीने वाला कब तक अपने आप को सुखी अनुभव कर सकता है? इस प्रकार उन का मन उत्सव से उच्चाट गया और वे वहाँ से आधे ही दिन में अपने घर की ओर चले आए।

25. कैता माया रामाए गला घोटा दीती ओ।

कैता माया रामाए स्वर्गा प्राबत भूई ओ।।

कैता माया राम को अब अपना जीवन भी भार स्वरूप प्रतीत होने लगा। वे सोचने लगे कि अपमानित जीवन जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है। मृत्यु से आलिंगन करने की अब उन्हें उतावली हो रही थी। इस प्रकार कैता परिवार का गृह स्वामी श्री माया राम ने अपना गला घोंट दिया और वे तुरन्त निष्प्राण हो गए। राज-आज्ञा अब उन का बाल भी बांका नहीं कर सकता था। माया राम, आदर्श के लिए शहीद होकर स्वर्ग को प्राप्त हुए। उन का आत्म-बलिदान व्यर्थ नहीं गया। तत्कालीन गवैयों ने उनके आदर्शमय जीवन को काव्य में संजो कर उन को अमर कर लिए। आज भी गाँव के रसिक गवैए, कैता माया राम की अमर-गाथा को जब लय में गाने लगते हैं, तो श्रोताओं की आँखों से श्रद्धाश्रु निर्झर बहने लगता है। ■

(मूल गाथा स्व. आचार्य प्रेम सिंह के सौजन्य से।)

भोटी भाषा के विकास-प्रसार की दिशाएं

एम० आर० ठाकुर

जिस प्रकार संस्कृत किसी समय वर्ग-विशेष की भाषा रही है, उसी प्रकार भोटी भी अपने आरम्भिक चरणों में विद्वानों की भाषा रही है। इतिहास हमें बताता है कि जब साधारण लोग प्राकृत, अपभ्रंश आदि स्थानीय भाषाएं बोलते थे, विद्वान अपने महाकाव्य, नाटक, कविताएं, उपन्यास आदि की रचना संस्कृत भाषा में करते थे। इसी प्रकार तिब्बत सहित हिमाचल का एक बहुत बड़ा भू-भाग जहां सामान्य बोल-चाल के लिए स्थानीय बोलियों का उपयोग करता रहा है, वहीं धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक गतिविधियों के लिये इस क्षेत्र के विद्वान भोटी का उपयोग करते रहे हैं। थोन्मी-सम्भोट ने सातवीं शताब्दी में भोटी की लिपि इस विद्वता और चतुरता से संगठित की है कि संस्कृत और पाली का बौध-साहित्य न केवल सरलता से अपितु अक्षरशः अनूदित हो सके, और इस तरह मूलतः यह अनुवादकों की भाषा रही है।

परन्तु भोटी भाषा एक दृष्टि से संस्कृत से अधिक सबल और सफल सिद्ध हुई है। जहां पाणिनि द्वारा क्लिष्ट वैयाकरणिक प्रावधानों में जकड़ी जाने के बाद संस्कृत की प्रगति अवरुद्ध हो गई और वह साधारण पाठक या आम जनता तो क्या संस्कृतेतर विद्वानों के लिए भी दुर्बोध बन गई, वहीं भोटी आज भी सामान्य पाठकों के लिए बोधगम्य और सरल है। इसी सरलता और बोधगम्यता ने इस भाषा को अधिक सशक्त और महत्वशाली बनाया है। आज भी जनजातीय क्षेत्र के जनमानस में अधिक व्यापक रूप से उपयोगी सिद्ध हो रही है। परन्तु बदलते समय में इसके विकास-प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति की प्रमुखतः चार दिशाएं हैं:-

1. भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान;
2. राष्ट्रीय साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता-प्रदान;
3. राज्य सरकार द्वारा विशेष प्रोत्साहन;
4. साहित्यकारों द्वारा व्यक्तिगत और सामूहिक योगदान;

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान

संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान की मांग करते हुए पहले उस घटनाक्रम का ऐतिहासिक अध्ययन करना अनिवार्य होगा जिसके आधार पर भारत की भिन्न भाषाओं को संविधान में स्थान दिया गया और आठवीं सूची में प्रदर्शित किया गया।

भारत की आज़ादी से पूर्व भारत की भिन्न भाषाओं के विकास-प्रसार का विषय स्वतन्त्रता संग्राम का एक अंग था। इसी लिए भले ही अंग्रेज़ी सरकार की प्रशासनिक पद्धति में भिन्न सूबों की सीमाएं प्रशासनिक सुविधा के अनुकूल भिन्न थीं, परन्तु कांग्रेस ने जो स्वतन्त्रता-संग्राम का केन्द्रीय संगठन था, भाषा के आधार पर 1912 में बिहार को और 1917 में सिन्ध और बाद में आन्ध्र को अपने भाषायी सूबे बनाए। इससे पहले भी 1905 में भाषा की एकता के मानदण्ड को लेकर अंग्रेज़ों की कूटनीति से कराए गए बंगाल के विभाजन को रद्द कराया था। इस दिशा में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम 1937 में कांग्रेस अधिवेशन का वह प्रस्ताव था जिसमें यह पारित किया गया कि स्वतन्त्र भारत में भाषायी आधार पर राज्य बनेंगे जिसका ''मूल उद्देश्य अल्पसंख्यकों और विभिन्न भाषायी क्षेत्रों की संस्कृति, भाषा और लिपि को सुरक्षण प्रदान करना होगा''। जब 26 जनवरी, 1950 को स्वतन्त्र भारत का संविधान लागू हुआ तो इसी प्रयोजन से संविधान की आठवीं सूची में निम्नलिखित प्रादेशिक भाषाएं दर्ज की गईं:-

1. संस्कृत	2. हिन्दी	3. उर्दू
4. कश्मीरी	5. पंजाबी	6. बंगाली
7. आसामी	8. गुजराती	9. मराठी
10. उड़िया	11. कन्नड़	12. तेलुगू
13. तमिल	14. मलयालम	15. सिन्धी

(सिन्धी संविधान के 21 वें संशोधन द्वारा 1967 में बाद में जोड़ी गई थी)

यदि इस उपबन्ध को भिन्न भाषाओं के विकास-प्रसार तक सीमित रखा होता तो न केवल इन भाषाओं का समय पर उचित विकास हुआ होता वरन् इस सूची में अनेक अन्य भाषाओं को शामिल करने में कोई कठिनाई या असुविधा न होती। परन्तु दुर्भाग्यवश समस्या तब खड़ी हुई जब भाषायी आधार पर राज्यों का गठन किया जाना प्रस्तावित हुआ और इस उद्देश्य से दिसम्बर 1953 को उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश फ़ज़ल अली की अध्यक्षता में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की स्थापना हुई जिसके हृदय नाथ कुंज़रू और सरदार के० एम० पन्नीकर अन्य सदस्य थे। आयोग ने देशभर का भ्रमण किया, 9000 विशिष्ट व्यक्तियों का साक्षात्कार किया और 1,52,250 लिखित प्रतिनिवेदनों का अध्ययन करने के बाद भाषायी आधार पर चौदह राज्यों और छह केन्द्र शासित क्षेत्रों की स्थापना का प्रस्ताव किया। अब क्या था? भानुमती का पिटारा खुल गया था। देश भर के अनेक भाषा-भाषियों ने भाषायी आधार पर नये राज्यों की मांग आरम्भ की। आयोग के प्रस्ताव पर बंबई

और पंजाब को द्विभाषी राज्य स्थापित किया गया। इसपर बम्बई, गुजरात तथा पंजाब में जो दंगा-फसाद और खून-खराबा हुआ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि तभी से अन्य भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल करने का विषय घोर समस्याओं का निमन्त्रण समझा जाने लगा। फिर भी जहां जिसका ज़ोर लगा नये राज्य बने हैं तथा समय-समय पर निम्नलिखित अन्य प्रादेशिक भाषाएं भी आठवीं सूची में जुड़ गई है:-

16. मणिपुरी, 19. मैथिली 22. संथाली
17. कौंकणी, 20. डोगरी
18. नेपाली, 21. बोड़ो

पूर्व विवेचन के दृष्टिगत यह कहना अनुचित न होगा कि यदि संविधान के गठन के समय भोटी भाषा का सही मूल्यांकन हुआ होता, दूरदराज़ के जनजातीय क्षेत्र के लोगों की भाषा और संस्कृति का संविधान के निर्माताओं को ज्ञान होता या उसका समुचित प्रतिनिधित्व हुआ होता, तो भोटी भाषा को उसी समय संविधान में अन्य पन्द्रह भाषाओं के साथ स्थान मिल गया होता। उस समय भी भोटी की स्थिति अनेक अन्य भाषाओं से अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और सशक्त थी। 1951 की जनगणना के अनुसार तब संस्कृत भाषा भारत की कुल जनसंख्या की तुलना में केवल 0.00010 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती थी। सिन्धी भारत में मात्र कच्छ, अजमेर, बम्बई तथा दिल्ली के कुछेक लोगों द्वारा बोली जाती थी जिनका अनुपात केवल एक प्रतिशत था। उस समय उर्दू किसी क्षेत्र-विशेष की भाषा नहीं थी और न आज है। 1951 की जनगणना हिमालय के दूरस्थ, दुर्गम और पर्वतीय जनजातीय क्षेत्रों में उचित रूप से संचालित ही नहीं हुई थी। अतः उस समय की परिस्थितियों के कारण भोटी भाषा और उसके लोगों के साथ जो अन्याय हुआ है उसका समाधान होना अनिवार्य है और भोटी भाषा को तुरन्त संविधान की आठवीं अनुसूची में दर्ज किया जाना चाहिए।

यह उल्लेखनीय है कि संविधान में सम्मिलित अधिकतर भाषाएं उस समय मात्र बोल-चाल की भाषाएं थीं। अनेक भाषाओं का क्षेत्र बहुत सीमित और संकुचित था। इस सीमीत क्षेत्र से बाहर वे एक-दूसरे की समझ से बाहर थीं। तब वे विदेशी भाषा अंग्रेजी का सहारा लेती थीं। इनकी तुलना में भोटी भाषा की स्थिति तब भी बड़ी प्रशंसनीय थी।

उस समय भी वह पश्चिम में जम्मू-कश्मीर के लद्दाख क्षेत्र से ले कर पूर्व में सिक्किम, मेघालय और अरुणाचल तक के विस्तृत क्षेत्र की भाषा थी। यही नहीं भोटी बहुत प्राचीन समय से लेकर तिब्बत देश के साथ सम्पर्क की भाषा रही है। जब भारत का मूल भू-भाग इस क्षेत्र से एक दम कटा हुआ था, यातायात के साधन नहीं थे, संचार-प्रसार के माध्यम नहीं थे, सामयिक सम्पर्क के प्रयोजन नहीं थे तब हिमालय का यह विस्तृत सारा क्षेत्र केवल भोटी भाषा के माध्यम से शिक्षा, धर्म, व्यापार, सामाजिक व्यवहार के लिए तिब्बत से सम्पर्क स्थापित किए हुए था। ऐसी प्राचीन, जीवन्त और समृद्ध भाषा को संविधान में स्थान न देना कठोर अन्याय है।

संविधान के लागू होने तक उसमें दर्ज अनेक भाषाओं का अपना सांझा रूप भी विकसित नहीं हुआ था। ग्रियर्सन के 'भारतीय भाषा सर्वेक्षण' के अनुसार मराठी की उन्तालीस बोलियां थी। बंगला की बोलियां एक दूसरे से इतनी भिन्न थी कि दक्षिण बंगाल के लोग उत्तर के बंगालियों की बोली नहीं समझ सकते थे। गुजरात की अनेकों बोलियों और बारह उपभाषाओं का उल्लेख है। दक्षिण भारत की भाषाओं की भी यही स्थिति थी। परन्तु भले ही भोटी क्षेत्र में स्थानीय बोलियां ज़रूर थीं परन्तु उन सब का सांझा रूप भोटी इतना समृद्ध था कि उसने सारे क्षेत्रों की बोलियों को अपने में संजोए रखा था।

उस समय कुछेक भाषाओं को छोड़ शेष भाषाओं में लिखित साहित्य विद्यमान नहीं था। तब बंगला और मराठी जैसी समृद्ध भाषाओं का साहित्य भी सौ-डेढ़ सौ वर्षों से अधिक पुराना नहीं था। छिट-पुट लेख मात्र संयोग होते हैं। संस्कृत को छोड़ यदि किसी भाषा का साहित्य उपलब्ध था तो वह हिन्दी का था तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास भी सम्वत् 1050 से आरम्भ होता है। यह हर्ष का विषय है कि भोटी में सातवीं शताब्दी से निरन्तर साहित्य रचना हो रही है और आज तक वह साहित्य उपलब्ध है। इसमें काव्य, नाटक, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, आयुर्वेद, तर्क शास्त्र, प्रमाण शास्त्र, दर्शन शास्त्र, अभिधर्म, पारमिताशास्त्र, धर्मशास्त्र, तन्त्र आदि' का विपुल साहित्य उपलब्ध है। केवल संस्कृत से भोटी में अनूदित ग्रन्थों की संख्या ही दस हज़ार से अधिक है। इतने प्रफुल्ल साहित्य की भाषा को संविधान में सम्मिलित न करना लाखों शान्ति प्रिय और अहिंसा अनुयायी जनजातीय बौध लोगों की भावनाओं का दमन करना है। कुछ विद्वानों और राजनीतिज्ञों को यह डर हो सकता है कि भोटी भाषा को संविधान में जोड़ने से किसी समय या किसी क्षेत्र से कभी नये राज्य की मांग खड़ी न हो जाए। परन्तु ऐसे भय का कोई आधार नहीं है। भोटी-भाषा क्षेत्र पहले ही दूर-दूर तक अनेकों राज्यों में फैला है और इस तरह उनके एकत्र होने और नये राज्य की मांग करने की कोई सम्भावना नहीं है। सभी क्षेत्र अपने-अपने राज्यों के अन्दर सन्तुष्ट हैं। इस दृष्टि से उनकी स्थिति वैसी ही है जैसी उर्दू भाषा-भाषियों की। जब ऐसी सम्भावना की गुंजाइश ही नहीं है तो इस तरह के भ्रम का पोषण करना युक्ति संगत नहीं है।

यह तर्क भी उचित नहीं है कि क्योंकि भोटी भाषा क्षेत्र दूर-दूर तक फैला है और उसमें क्षेत्रीय एकता नहीं है इसलिए आठवीं सूची में दर्ज नहीं किया जा सकता। हिन्दी भी किसी एक राज्य की भाषा नहीं है। उसका भी भोटी की तरह अनेक राज्यों में विस्तार है।

आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने के लिए जन-संख्या का भी कोई मानदण्ड नहीं है। सिन्धी, कौंकणी, मणिपुरी की जनसंख्या भोटी की जनसंख्या से बहुत कम है। नेपाली मूल रूप से नेपाल देश की भाषा है। जब एक विदेशी भाषा को संविधान में स्थान मिल सकता है तो भोटी को जो भारत की भाषा है, यह स्थान क्यों नहीं मिल सकता।

यह कहना भी उपयुक्त नहीं है कि भोटी भाषा के लोगों ने अपनी भाषा को संविधान में दर्ज करने के लिए प्रयत्न नहीं किए हैं। वे बहुत लम्बे समय से अपनी उचित मांग के लिए प्रयत्न करते रहे हैं। हां, ये सारे प्रयत्न शान्त और सौम्य रूप से चलते रहे हैं। उन्होंने कभी संघर्ष का रास्ता नहीं अपनाया है। वे अब समझने लगे हैं कि शान्ति का पथ सम्भवतः रुकावट बन कर उनकी न्यायोचित मांग के मनवाने में रोड़े अटका रहा है। इस लम्बे समय में बौद्ध धर्म अनुयाइयों द्वारा आज तक विभिन्न सम्मेलनों और आयोजनों में अनेक बार प्रस्ताव पास करके केन्द्र सरकार से अनुरोध किया गया है। अनेक ज्ञापन दिए गए हैं।

हिमालयन बुद्धिस्ट कल्चरल एसोसिएशन, नई दिल्ली के अध्यक्ष माननीय लामा छोफेल ज़ोत्पा विशेष रूप से इस सम्बन्ध में प्रयत्नशील रहे हैं। जितनी बार सरकारें बदली हैं वे तथा संस्था के सदस्य भोटी को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देने के सम्बन्ध में प्रधानमन्त्रियों को ज्ञापन देते रहे हैं। 4 अप्रैल, 2003 से 7 अप्रैल, 2003 तक दिल्ली में आयोजित हुए राष्ट्रीय सम्मेलन के अवसर पर, जिसमें अन्तिम समारोह की अध्यक्षता महामहिम दलाईलामा ने की थी, हिमालयन बुद्धिस्ट कल्चरल एसोसिएशन ने एक स्मारिका प्रकाशित की थी। उसमें श्री ज़ोत्पा तथा अन्य सदस्यों ने जब-जब ज्ञापन दिए हैं उन में राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह (25 जुलाई, 1982 से 25 जुलाई, 1987), राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा (25-7-1992 से 25-7-1997), स्व० प्रधानमन्त्री राजीव गांधी (31-10-84 से 2-12-1989), श्री चन्द्रशेखर (10-11-1990 से 21-6-1991), श्री आई० के० गुजराल (21-04-1997 से 19-03-1998) तथा श्री अटल बिहारी बाजपेयी (19-03-1998 से 13-05-2004) के फोटो ज्ञापन लेते हुए दर्शाये गए हैं। इसी स्मारिका में पूर्व प्रधानमन्त्री श्रीअटल बिहारी बाजपेयी को दिए गए एक अन्य ज्ञापन की प्रतिलिपि भी प्रकाशित हुई है जिसमें 113 संसद सदस्यों के हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने भोटी को संविधान में स्थान देने के लिए प्रतिवेदन किया है।

परन्तु खेद है कि इतने प्रयत्नों के होते हुए भी भोटी भाषा को अभी संविधान की आठवीं सूची में स्थान नहीं मिला है। यह खेद और अधिक गम्भीर हो जाता है, जब हम देखते हैं कि 23 दिसम्बर 2003 को संविधान के सौवें संशोधन द्वारा चार और भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया- मैथिली, डोगरी, बोडो और संथाली। भोटी भाषा-भाषियों को किसी भी भाषा के संविधान में शामिल होने पर कोई आपत्ति ईर्ष्या नहीं है, परन्तु यदि भाषाएं मात्र संघर्ष और राजनैतिक आन्दोलनों द्वारा ही यह स्थान प्राप्त करती हैं तो क्या सरकार यह चाहती है कि शान्ति के दूत बौद्ध धर्मानुयायी आन्दोलनों के लिए सड़क पर उतर आएं। इन भाषाओं को कैसे यह स्थान मिला मीडिया-पत्राचार इस तथ्य के साक्षी हैं। इन चार में से ऐसी भी भाषाएं हैं जिनका कोई लिखित साहित्य नहीं है। इसीलिए बिल पर बोलते हुए सांसद श्री रामशंकर कौशिक ने कहा कि साधारण ''बोलचाल की भाषाओं को मान्यता देने से हिन्दी के राज-काज की भाषा के प्रयोजन को हानि पहुंच सकती है।'' राष्ट्रीय जनता दल के प्रमुख नेता श्री लालू प्रसाद यादव ने कहा था कि ''आठवीं सूची में मात्र बोल-चाल की भाषाओं को सम्मिलित करने से केन्द्र सरकार ने भिड़ के छत्ते को छेड़ा है।'' विधेयक को प्रस्तुत करते हुए उस समय के उप-प्रधानमन्त्री श्री लाल कृष्ण आडवानी ने कहा था कि यह पहला समय है जब बोडो और संथाली दो जनजातीय भाषाएं आठवीं सूची में शामिल की जा रही हैं क्योंकि बोडो उग्रवादियों के साथ बात-चीत के बीच उनकी भाषा बोडो को आठवीं अनुसूची में शामिल करने के लिए सरकार ने सहमति दी थी। उप-प्रधानमन्त्री ने सदस्यों को यह भी आश्वासन दिया कि भाषाविदों और विशेषज्ञों से विचार-विमर्श करने के बाद अन्य भाषाओं को आठवीं अनुसूची में दर्ज करने के लिए एक व्यापक कानून लाया जाएगा।

ऐसी अवस्था में यह आशा की जानी चाहिए कि भोटी भाषा को भी शीघ्र संविधान में स्थान मिल पाएगा और बुद्ध के शान्तिप्रिय अनुयाइयों को सत्य, अहिंसा और विनम्रता का पथ छोड़ कर किसी आन्दोलन के लिए विवश नहीं होना पड़ेगा, विशेषतः उन स्थितियों में जब भोटी भाषा में वे सारी अपेक्षाएं विद्यमान हैं जो संविधान में स्थान प्राप्ति के लिए ज़रूरी हैं। उसमें सातवीं शताब्दी से लेकर लगातार साहित्य लिखा जा रहा है। उसमें बौद्ध-धर्म की ऐसी पुस्तकों का संग्रह है जिनका संस्कृत में मूल अब प्राप्त नहीं है। उसकी अपनी उत्कृष्ट लिपि है जो देवनागरी पर आधारित है। वे हिमालय के पश्चिम में लेह-लद्दाख से लेकर पूर्व में अरुणाचल, सिक्किम तक लाखों लागों की जनजातीय भाषा है और उसके अनुयायी एक लम्बे समय से इसे संविधान में स्थान-प्राप्ति हेतु न्यायोचित मांग कर रहे हैं।

साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता

भोटी भाषा के विकास-प्रसार और प्रगति के लिए राष्ट्रीय साहित्य अकादमी की मान्यता भी परमावश्यक है। संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाएं साहित्य अकादमी द्वारा स्वतः मान्यता-प्राप्त हो जाती हैं। परन्तु इन भाषाओं के अतिरिक्त भी अकादमी मान्यता देती है और अनेक बार अकादमी भाषाओं को मान्यता दे चुकी है।

हमारे पड़ोस की भाषा डोगरी उनमें से एक है। भोटी को मान्यता मिलने से इसे अपने विकास के लिए अनेक सहायता अनुदान और कार्यक्रम मिल जाएंगे। अन्य भाषाओं का कोई विद्वान भोटी की कुछ उत्तम पुस्तकों का अपनी भाषा में अनुवाद कर सकता है। तब अन्य भाषाओं के पाठकों को भोटी भाषा के गुण, प्रकृति और स्वभाव का ज्ञान हो सकता है। इसका क्षेत्र-विस्तार बढ़ेगा। भोटी के विद्वान भी अन्य भाषाओं की उत्तम पुस्तकों का भोटी में अनुवाद कर सकते हैं जिसके लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार देती है।

साहित्य अकादमी के लिए एकमात्र मानदण्ड उस भाषा के साहित्य की प्रचुर मात्रा और गुणवत्ता है। सौभाग्य से भोटी में ऐसे साहित्य की कमी नहीं है। केवल प्रयत्नों की ज़रूरत है। भोटी के प्राचीन साहित्य की समृद्धता के बारे में तो किसी सन्देह की सम्भावना नहीं। वह बड़ा शक्तिशाली साहित्य है। हां, आज कल कितना लिखा जा रहा है और वह किस स्तर का है यह निश्चय करने की आवश्यकता है।

राज्य सरकार द्वारा विशेष प्रोत्साहन

प्रदेश की शिक्षा-प्रणाली राष्ट्रीय नीति-पद्धति पर निर्भर करती है। कोई सरकार शिक्षा-प्रसारण में किसी क्षेत्र-विशेष से किसी तरह का भेदभाव नहीं अपना सकती। न ही कोई माता-पिता शिक्षा के वर्तमान लाभों से अपनी सन्तान को वंचित रख सकते हैं। ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी शिक्षा का लाभ तो समान रूप से क्षेत्र को उठाना चाहिए। परन्तु यह भी ज़रूरी है कि जहां हर छात्र को राष्ट्रीय भाषा का ज्ञान हो वहीं स्थानीय भाषा को भी प्रोत्साहित किया जाए। इन क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा भोटी भाषा और लिपि में ही उपलब्ध करानी चाहिए। वहां भोटी का ज्ञान रखने वाले अध्यापक ही अधिक उपयोगी हो सकते हैं। उन्हें जे० बी० टी० का विशेष प्रशिक्षण दिया जाना ज़रूरी है।

भोटी भाषा और साहित्य के प्रोत्साहन के लिए भोटी-साहित्य अकादमी का गठन इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम हो सकता है। इसके अन्तर्गत लेखकों को पुस्तक प्रकाशन हेतु सहायतानुदान का प्रबन्ध ज़रूरी है। इन क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण प्राचीन पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं। उनके प्रकाशन का प्रबन्ध किया जाना चाहिए ताकि उनके अधिक पाठक लाभ उठा सकें।

भोटी भाषा के कवियों और लेखकों को प्रोत्साहन दिया जाना ज़रूरी है। समय-समय पर कवि-गोष्ठियां और लेखक-सम्मेलन आयोजित किए जाने चाहिए ताकि उनका अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति के प्रति अनुराग बना रहे तथा भोटी साहित्य का अधिकाधिक विकास-प्रसार हो।

भोटी भाषा के साहित्य की अभी स्पष्ट तस्वीर सामने नहीं आई है क्या कुछ लिखा गया है? कहां प्राप्त है, उसका आकार-प्रकार क्या है? यह हम बहुत स्पष्ट रूप से नहीं जानते। इस लिए एक सन्दर्भ-पुस्तिका का प्रकाशन ज़रूरी है। यह किसी एक व्यक्ति का काम नहीं है। सरकार को विद्वानों का एक मण्डल स्थापित करके इस वृहत कार्य को शीघ्र सम्पन्न करना चाहिए। इससे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शोध-छात्रों और पाठकों को सुविधा प्राप्त होगी।

साहित्यकारों द्वारा योगदान

कहा जा सकता है कि जिस भाषा में सैंकड़ों वर्षों से साहित्य सृजन हो रहा हो उसके विकास-प्रसार में अब साहित्यकारों का क्या नया योगदान हो सकता है, उसके लिए तो वे पहले से ही सक्रिय हैं। निश्चय ही भोटी का प्राचीन साहित्य बहुत प्रसिद्ध और समृद्ध है और लगातार उस में वृद्धि हो रही है। परन्तु भाषा का विकास एक निरन्तर उपक्रम है तथा हर समय उसमें परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य सृजन होता है। भोटी के धार्मिक और दार्शनिक समृद्ध साहित्य को रचनात्मक साहित्य की वर्तमान परिस्थितियों में तुरन्त और अत्यन्त आवश्यकता है। इस लिए वर्तमान विद्वान साहित्यकारों को भोटी में अधिकाधिक सृजनात्मक साहित्य प्रदान करना चाहिए। भोटी में वर्तमान परिस्थितियों की कविताओं, कहानियों, नाटकों, उपन्यासों और निबन्धों की परम आवश्यकता है ताकि भोटी साहित्य-जगत में इन विधाओं की रचनाओं का प्रचुर समावेश हो जाए। इससे उस आलोचना का भी समाधान हो जाएगा कि भोटी में रचनात्मक साहित्य की कमी है। इससे भोटी साहित्य को नई दिशा मिलेगी। भाषा की समृद्धि मात्र सरकारी प्रोत्साहनों से सम्भव नहीं है। उसके साहित्यकारों की भूमिका ही उसे और अधिक ऊँचा स्थान प्रदान कर सकती है। साहित्य अकादमी में मान्यता सच-मुच भाषा के साहित्य पर निर्भर करती है और बिना नये साहित्य के केवल प्राचीन साहित्य इसके लिए पर्याप्त नहीं है। यह सारा साहित्य प्रकाशित रूप में उपलब्ध होना चाहिए। पिछले पच्चास वर्षों में अनेक प्रादेशिक भाषाओं ने अपने साहित्य भण्डार को बड़ा समृद्ध किया है और भोटी के साहित्यकारों को इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। कहानियों, कविताओं, निबन्धों, नाटकों का अभाव भोटी भाषा में अखरती है जिसकी शीघ्र प्रतिपूर्ति अपेक्षित है। समस्त भोटी भाषा क्षेत्र लोक-साहित्य के लिए बड़ा प्रसिद्ध है। लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोकोक्तियों और लोकनाट्यों पर शोधात्मक कार्य की अपेक्षा है और इनके अनेकों संग्रह प्रकाशित हो सकते हैं। ■

गांव शांघन, डाकघर भल्याणी,
कुल्लू।

हीनयान और महायान में मौलिक भेद

डॉ० टशी पलजोर

हीनयान और महायान के बीच प्रमुख अन्तर उनके विचार या मार्ग द्वारा होता है। इन दोनों के अपने-अपने विचारों की दृष्टि से दो उद्देश्य हो जाते हैं। हीनयान के अनुयायी त्रिलोक को कारावास की तरह देखते हैं तथा वे संसार से तुरन्त मुक्त होना चाहते हैं और मोक्ष को अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। वे स्वयं संसार के दुःखों से अतिशीघ्र मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेने का कठिन प्रयास करते हैं। हीनयान के आधार दो सत्य हैं, संवृति सत्य एवं परमार्थ सत्य। शिक्षा तीन हैं--शील, समाधि और प्रज्ञा। शील आठ प्रकार के हैं, वे इनका कठिन परिश्रम के द्वारा अभ्यास करते हैं। अन्तिम प्राप्य वस्तु दो तरह के निर्वाण हैं-सोपधिशेष निर्वाण एवं निरुपधिशेष निर्वाण। इनके मतानुसार कार्यों की व्यवस्था नहीं है। महायान के अनुयायी त्रिलोक के समस्त प्राणियों का कल्याण स्वयं करना चाहते हैं। उनका विचार है कि संसार के सभी प्राणी दुःखों से पीड़ित हैं। वे तब तक चैन नहीं लेंगे, जब तक सभी प्राणियों के दुःख दूर करने की क्षमता स्वयं में प्राप्त न हो। इस उद्देश्य से वे स्वचित्त का परिपाक करने के लिए छः पारमिताओं के अभ्यास करते हैं और परार्थ के लिए चतुःसंग्रहवस्तु का अभ्यास करते हैं। महायान का आधार भी दो सत्य ही हैं। प्रज्ञा और उपाय मार्ग हैं। फल दो काय हैं-ज्ञानकाय और रूपकाय। इन तीनों विषयों के अन्तर्गत महायान का समस्त-अभ्यास आ जाता है।

बौद्धधर्म में अभ्यास करने के लिए प्रमुख पाँच विषय हैं। उत्पत्तिक्रम तथा सम्पन्नक्रम द्वारा इन पाँच विषयों का श्रद्धापूर्वक मनोयोग द्वारा अभ्यास करने पर इस कलियुग का मानव भी एक ही जीवन में बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है।

बौद्ध आगम एवं शास्त्रों में अनेक बार कहा गया है कि मार्गाभ्यास के क्रम को सम्यक् जानकर ही अभ्यास करना तथा श्रवण, चिन्तन एवं भावना करना चाहिए। इन विषयों को भगवान् शाक्यमुनि ने त्रिपिटक में विस्तृतरूप से बतलाया है। बाद में बुद्ध के उपदेशों को साधारण जन सरलता से समझ नहीं सके। बौद्ध आचार्यों ने कठिन परिश्रम कर त्रिपिटक के मुख्य विषयों को क्रमबद्ध कर शास्त्रों की रचना की। जिससे विनेयजन बुद्ध-उपदेशों को उचित ढंग से समझ सकें। जितने भी बौद्ध आचार्य हुए हैं, उन सब ने त्रिपिटक के उपदेशों को ही स्पष्ट करने के लिए शास्त्रों की रचना की है। बौद्ध धर्म का स्पष्ट मत है कि जितने भी बुद्ध हुए हैं और होंगे, उन सबका एक ही धर्म है। विनेयजनों के धातु, इन्द्रिय, विचारों को देखते हुए सभी बुद्धों ने विभिन्न प्रकार के उपदेश प्रदान किए हैं।

महायान एवं हीनयान में मौलिक क्या भेद हैं? इस पर विद्वानों में शंका उत्पन्न होना स्वभाविक है, क्योंकि इन दोनों शिक्षाओं के प्रवर्तक शाक्यमुनि ही हैं। बुद्ध के पास जिस प्रकार के धर्म के अभिलाषी विनेयजन दर्शनार्थ पहुँचते थे, वे उनके विचार और धातु के अनुसार ही प्रवचन प्रदान करते थे। बुद्ध भगवान् का मुख्य अभिप्राय त्रिलोकी के समस्त प्राणियों को संसार से मुक्त कराकर सभी दोषों से रहित तथा समस्त गुणों से सम्पन्न बुद्ध का पद प्राप्त कराना है। परन्तु इस महान् पद को सभी प्राणी उपलब्ध नहीं कर सकते। अतः तथागत ने विनेयजनों के सामर्थ्य को देखकर उपदेश दिया। बुद्ध भगवान् का अभिप्राय यह नहीं था कि प्राणियों को अपने-अपने स्थान पर ही छोड़ दें। उन्होंने अनेक तथागतों के सन्मुख पाँच सौ प्रणिधान किए। शाक्यमुनि से पूर्व अनेक बुद्ध हुए, उन सबने प्राणियों के क्लेशावरणों को देखकर छोड़ दिया। तथागत ने अनेक कुशल उपायों द्वारा सत्त्वों को भवसागर से निकालने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा की। भगवान् बुद्ध प्राणियों के लिए पूर्व तथागतों से अधिक कारुणिक हैं। शाक्यमुनि ने विनेयजनों को अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए त्रिपुरुषीय धर्म का उपदेश दिया। जो व्यक्ति मृत्यु के बाद पुनः देव और मनुष्य लोक में जन्म लेना चाहता है, उनके लिए अधम पुरुषीय धर्म बतलाया गया है, इस प्रकार का पुरुष केवल अभ्युदय को लक्ष्य बनाता है। अभ्युदय का हेतु शील है। सुगति में जन्म पाने के लिए शील से इतर कुछ भी नहीं हो सकता। मनुष्यों का जो वर्तमान जीवन है, वह भी शील का ही प्रतिफल है। अभ्युदय को प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों को भी बुद्ध के मौलिक धर्मों का अवश्य ही अभ्यास करना पड़ता है, जैसे-शरणगमन, दुर्लभ जीवन एवं कर्मफल पर चिन्तन करना, दश कुशल कर्मों का अभ्यास करना

आदि। शरणागति के दो कारणों पर दृढ़ विश्वास करना चाहिए जैसे- भय और विश्वास।

मध्यम पुरुष अन्य सत्वों का भार अपने ऊपर न लेकर स्वयं मोक्षमात्र के लिए प्रयास करते हैं। मोक्ष प्राप्ति का मुख्य कारण अनात्म अर्थ को जाननेवाली प्रज्ञा है। वे मोक्ष को ही अन्तिम लक्ष्य मानते हैं। मध्यम पुरुष का निषेध्य पुद्गलात्मा है। बुद्ध ने मध्यम पुरुष सम्बन्धी धर्म विनेयजनों को सही मार्ग पर लाने के लिए ही बताया है। वे जानते थे कि विनेयजनों को किससे लाभ होगा। महापुरुष सम्बन्धी धर्म, पात्रों की जिज्ञासा को देखकर ही प्रदान किया। महायान के अनुयायी समस्त प्राणियों के हितार्थ बोधिचित्त का उत्पाद करते हैं। बोधिचित्त में स्वार्थ और परार्थ दोनों रहते हैं। जितने भी बुद्ध के उपदेश हैं, वे सभी इन तीन पुरुषों सम्बन्धी धर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। इन तीनों पुरुषों को धर्म के अनुसार ही अभ्यास करना पड़ता है। हीनयान तथा महायान के अतिरिक्त वज्रयान के मार्ग-क्रमों को भी बुद्धत्व प्राप्त करने वालों को सीखना अनिवार्य है। इन तीनों यानों के सम्पूर्ण अभ्यास के बिना अन्तिम लक्ष्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। जितने भी बुद्ध हुए हैं, उन्होंने इन मार्ग-क्रमों का उपदेश किया है। ये तीनों यान एक दूसरे के पूरक हैं। भगवान् शाक्यमुनि ने भी बोधगया में बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व एक रात्रि में दश दिशाओं में विद्यमान बुद्धों और बोधिसत्त्वों से समस्त तन्त्रों का अभिषेक किया तथा उसी रात बुद्ध ने अभ्यास कर बुद्धत्व प्राप्त किया। तन्त्र के अभ्यास के बिना व्यक्ति बुद्ध नहीं हो सकता। अनेक शास्त्रों में यह कहा गया है कि मन्त्रयान में प्रवेश कर उसके मार्गाभ्यासों के बिना कोई भी तथागतत्व या बुद्धत्व नहीं प्राप्त कर सकता, क्योंकि रूपकाय का मुख्य कारण देवयोग अधूरा रह जाता है। यह भी कहा गया है कि समस्त तथागतों को शीघ्र, गम्भीर, व्यापक आदि ज्ञान के अर्जन के लिए आर्य मञ्जुश्री का सेवन ही करना पड़ता है। हीनयान, महायान और मंत्रयान तीनों एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। वास्तव में एक दूसरे के पूरक हैं।

बुद्धत्वप्राप्ति का कारण प्रज्ञा और उपाय हैं। इन दो कारणों के फलस्वरूप ही ज्ञानकाय एवं रूपकायों की उपलब्धि होती है। महायानियों के अन्तिम लक्ष्य स्वार्थ के लिए धर्मकाय और परार्थ के लिए द्वितीय रूपकाय है। ये दो काय ही महायानियों के अन्तिम एवं श्रेष्ठ लक्ष्य माने जाते हैं।

हीनयान धर्म के आधार दो सत्य हैं, इनकी भी दो प्रमुख शाखाएं हैं- वैभाषिक और सौत्रान्त्रिक। इन दोनों शाखाओं के भी दो सत्यों के विषय में पर्याप्त भेद हैं। मैंने यहाँ इन दो सिद्धान्तवादियों के दो सत्यों के विषय में ''चुनपा कानचोग जिगमेद वंगपो'' द्वारा रचित रत्नावली नामक सिद्धान्त ग्रन्थ के आधार पर लिखा है।

वैभाषिक मतानुसार संवृति सत्य

इनके मतानुसार परमार्थ सत्य और द्रव्यसत्य दोनों का समान अर्थ है। संवृतिसत् और प्रज्ञप्ति का भी समान अर्थ है। किसी आघात या बुद्धि द्वारा वस्तु को पृथक्-पृथक् करने पर विलुप्त होने योग्य बुद्धि का जो आलम्बन है, वह संवृति सत्य का लक्षण है। जैसे घट और माला इसका उदाहरण है। घट को हथोड़े से विनाश करने पर घट ग्रहण करने वाली बुद्धि विलुप्त हो जाती है। माला के गोल दानों को पृथक्-पृथक् करने पर मालाग्राही बुद्धि भी समाप्त हो जाती है।

वैभाषिक का परमार्थ सत्य - आघात या बुद्धि द्वारा वस्तु का विश्लेषण करने पर हटने योग्य बुद्धि का जो आलम्बन धर्म नहीं है, वह परमार्थ सत्य का लक्षण है। दिशा और अंश रहित अणु, अंशरहित क्षण, असंस्कृत आकाशादि इसके उदाहरण हैं।

आचार्य वसुबन्धु ने अभिधर्मकोश में भी कहा है-

यत्र भिन्ने न तदबुद्धिःरन्यापोहे धिया च तत् ।
घटाम्बुवत् संवृतिसत् परमार्थसदन्यथा ।।

अतः संवृतिसत् परमार्थतः सिद्ध न होने पर भी सत्यतःसिद्ध है। इस सिद्धान्त के अनुसार भाव के साथ सत्यतःसिद्ध होने की व्याप्ति स्वीकार की जाती है।

सौत्रान्त्रिक मत के दो सत्य

परमार्थ एवं संवृतिसत्य का लक्षण - शब्द एवं कल्पना के द्वारा प्रज्ञप्त होने की बिना अपेक्षा किए स्वयं वास्तविकता की ओर से युक्ति द्वारा विचारने योग्य सिद्ध जो धर्म है, वह परमार्थ है। भाव, परमार्थ, स्वलक्षण, अनित्य, संस्कृत, सत्यसिद्धादि परमार्थ सत्य के पर्याय हैं। संवृति सत्य का लक्षण - कल्पना द्वारा प्रज्ञप्तिमात्र सिद्ध जो धर्म है, वह संवृतिसत्य है, अभाव धर्म, मिथ्यासिद्ध आदि संवृतिसत्य के पर्याय हैं।

दो सत्यों की शब्दव्याख्या इस प्रकार है - असंस्कृत धर्म आकाश आदि संवृतिसत्य हैं, क्योंकि वे संवृति बुद्धि के सामने सत्य हैं। सौत्रान्त्रिक के मतानुसार संवृति कल्पना है। वह स्वलक्षण को प्रत्यक्ष दीखने में आवरण करती है, अतः संवृति कही जाती है। यह भी शब्दव्याख्या मात्र है। संवृति बुद्धि (कल्पना) के सामने सत्य होने से भी संवृति सत्य है, इसकी व्याप्ति नहीं बन सकती है, क्योंकि परमार्थ सत्य जो घट है, वह भी संवृति कल्पना के सम्मुख सत्य है। पुदगलनैरात्म्य और नित्य वस्तु संवृति बुद्धि के सामने सत्य होने पर भी यह व्यवहार में भी सिद्ध नहीं हैं। घट आदि धर्मों को परमार्थ सत्य कहा जाता है, क्योंकि वे परमार्थ बुद्धि के सामने सत्य होते हैं। यह परमार्थ बुद्धि अभ्रान्त ज्ञान है।

ये दो सत्यों सम्बन्धी मत युक्ति-अनुयायी सौत्रान्त्रिकों के हैं। आगम-अनुयायी सौत्रान्त्रिकों के दो सत्यों के सिद्धान्त वैभाषिकों के समान हैं। विज्ञानवादियों के दो सत्य इस प्रकार के हैं - संवृति सत्य

का लक्षण जो व्यवहारविचारक प्रमाणबुद्धि द्वारा प्राप्त है, वह संवृति सत्य है। मिथ्या संवृति सत्य, व्यवहार सत्य आदि संवृति सत्य के पर्याय हैं। परमार्थ सत्य का लक्षण-परमार्थविचारक मीमांसिका प्रमाणबुद्धि द्वारा जो प्राप्तार्थ है, वह परमार्थ सत्य है। शून्यता, धर्मधातु, परिनिष्पन्न, परमार्थ सत्य, सम्यगन्त, तथता आदि परमार्थ सत्य के पर्याय हैं।

परमार्थ सिद्ध के साथ स्वलक्षण से सिद्ध की व्याप्ति बनती है। संवृति सत्य हो तो स्वलक्षण से सिद्ध की व्याप्ति नहीं बनती है। क्योंकि परतन्त्र स्वलक्षण से सिद्ध होने पर भी परिकल्पित समस्त धर्म स्वलक्षण से सिद्ध नहीं है। यद्यपि मिथ्या सिद्ध होने की आवश्यकता नहीं है।

माध्यमिकों के दो सत्य - व्यवहारविचारक प्रमाण द्वारा जो प्राप्तार्थ है, वह संवृति सत्य का लक्षण हैं। इसका लक्ष्य घट आदि है। सम्यक् संवृति सत्य एवं मिथ्या संवृति सत्य इन दोनों में भेद नहीं हैं; क्योंकि सम्यक् संवृति नहीं होती है। संवृति हो तो सम्यक् नहीं होना चाहिए। क्योंकि संवृति तो मिथ्या ही होना चाहिए। लौकिक साधारण लोगों के ज्ञान के सामने सम्यक् एवं मिथ्या दो संवृति होती हैं। जैसे लौकिक ज्ञान के सामने रूप सम्यक् है तथा दर्पण के भीतर के प्रतिबिम्ब रूप लौकिक ज्ञान के सामने भी सम्यक् नहीं हैं, अतः व्याप्ति नहीं बन सकती है, क्योंकि सत्य सिद्ध जो रूप है, वह सम्यक् है।

परमार्थ सत्य - अन्तिम मीमांसक प्रमाण द्वारा जो प्राप्तार्थ है, वह परमार्थ सत्य का लक्षण है। घट स्वभाव से नहीं है, यह इसका लक्ष्य है।

इस प्रकार हीनयान और महायान में पर्याप्त भेद हैं।

हीनयान में बोधिसत्त्वों की तरह शरीर, प्राण आदि दान देने का अभ्यास नहीं हैं। हीनयान में शील है, परन्तु परार्थ के लिए दस प्रकार की क्रिया आदि के द्वारा प्राणियों की अर्थक्रिया के लिए शील और बोधिचित्त की अठारह मूल आपत्ति एवं मन्त्रयान की चौदह मूल आपत्ति आदि का पालन करने का शील नहीं है। हीनयान में शील है, परन्तु महायानियों की तरह अवीचिनरक में प्रवेशकर सत्त्वों का कल्याण करने तथा तीन असंख्येय कल्प तक पुण्यार्जन करने से वे डरते हैं। इस प्रकार के फर्क हैं। हीनयानियों में भी वीर्य पारमिता है, परन्तु महायानियों के देशभूमि सूत्र में वर्णित प्रणिधान, उपाय, बल आदि की वीर्यपारमिता नहीं है। हीनयान में भी अनित्यादि को सूक्ष्म और स्थूल रूप से जानने का हेतु प्रज्ञा है, परन्तु महायानियों की तरह अनेक युक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार की प्रज्ञाओं द्वारा जानने की क्षमता नहीं है।

इस प्रकार हीनयान और महायान के भेदों को मैंने स्व-अध्ययनार्थ लिखा है। आज विश्व में इन दोनों को कुछ लोग एक दूसरे के विरोधी समझते हैं। हिमालय के विद्वान और तिब्बती विद्वान् इन दोनों को एक दूसरे का पूरक समझते हैं। ■

इस लेख के प्रायोजक ▶

भीम प्रेयसी हिड़िम्बा

तेजराम नेगी

प्रथम कड़ी-

© R.K Telangba

जब गुरु द्रोणाचार्य ने देखा कि कौरव एवं पाण्डवों के राजकुमार अपने अस्त्र-शस्त्र संचालन में निपुण हो गए हैं तब उन्होंने भीष्म पितामह, विदुर आदि को साथ लेकर कौरव-सम्राट धृतराष्ट्र से कहा-

''महाराज! आपके सभी राजकुमार सब प्रकार की विद्याओं में निपुण हो चुके हैं। यदि आप की आज्ञा हो तो उनकी अस्त्र-शस्त्र विद्या के कौशल की परीक्षा एवं युद्ध कला का प्रदर्शन किसी दिन नियत समय में सब प्रजा के सामने किया जावे।''

द्रोणाचार्य के सुझाव से प्रसन्न होकर धृतराष्ट्र ने कहा ''हे आचार्य! मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ विश्वसित भी हूँ कि आपने हमारे वंश के राजकुमारों को अपने ही समान शस्त्र विद्या में निपुण बना दिया है। आप ने हमारा बड़ा उपकार किया है। अतः अब आप सब आपस में निर्णय करके इस रङ्गमण्डप के आयोजन हेतु स्थान एवं समय का चयन करके स्वयं नियत करें, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।'' इसके पश्चात् ही उन्होंने विदुर जी से कहा,''हे महात्मा विदुर! आचार्य के आज्ञानुसार इस राजकीय रङ्गमण्डप की शीघ्र तैयारी करो, क्योंकि यह काम मुझे अत्यन्त प्रिय है।''

आचार्य द्रोण ने एक स्वच्छ एवं समतल भूमि का चयन किया और शुभ मुहूर्त में पूजा-अर्चना करके उस स्थान पर विभिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यथास्थान रख दिए गए। द्रोणाचार्य ने समयानुसार देवताओं की पूजा कर वेदपाठी ब्राह्मणों से मङ्गलपाठ कराया।

राजकुमारों ने सर्वप्रथम धनुष-बाणों का युद्ध-कौशल दिखाया। तत्पश्चात् रथ, हाथी, और घोड़ों पर सवार होकर युद्ध-कौशल का प्रदर्शन भी किया। मल्ल-युद्ध की कलाबाज़ी एवं ढाल-तलवार के विभिन्न प्रकार के हस्तलाघव भी दिखाए। सब से अधिक रोमांचकारी और भयानक भीमसेन और दुर्योधन का गदा-युद्ध था। वे अपनी गदा-युद्ध की कलाबाज़ी का प्रदर्शन करते-करते सचमुच ही एक दूसरे को पराजित करने तथा गहरी चोट पहुंचाने के इरादे से लड़ने लगे। दुर्योधन अपनी चालाकी और फुर्तीलेपन के कारण कभी-कभी बलवान और भारी-भरकम शरीर वाले भीम की चोट से साफ बच जाते थे और भीम पर अनैतिक उपाय से चोट पहुंचाने का यत्न करता था, जिससे भीम को अधिक क्रोध आ जाता था, परिणाम स्वरूप दोनों एक-दूसरे को अधिक से अधिक चोट पहुंचाने के इरादे से खूंखार-रूप धारण करके युद्ध करने लगे। इस प्रकार कभी दुर्योधन भीम पर भारी पड़ जाता और कभी भीम की भारी चोट से दुर्योधन आहत हो जाता। अन्त में उन दोनों का कृत्रिम-युद्ध, यथार्थ-युद्ध के रूप में परिणत हो गया। उन दोनों को युद्धोन्माद की सीमा तक बढ़ते देख कर इस रङ्गमण्डप में आए हुए अतिथियों और प्रजाजनों में भी दो वर्ग बन गए थे। एक वर्ग की सहानुभूति भीम की ओर थी तथा दूसरे वर्ग की सहानुभूति दुर्योधन की ओर हो रही थी। वातावरण की स्थिति विस्फोटक रूप धारण कर चुकी थी। तब द्रोणाचार्य ने अपने पुत्र अश्वत्थामा को अपने निकट बुलाकर कहा,''बेटा! तुम जाओ और इन दोनों के युद्ध को शीघ्र रोक दो, अन्यथा इन दोनों के इस युद्ध को देखकर सारी जनता भड़क उठेगी। कहीं ऐसा न हो कि यह रङ्गमण्डप ही रणक्षेत्र बन जाए।'' अश्वत्थामा ने बड़ी कठिनाई से उन दोनों को रोककर और उनके युद्ध को अनिर्णीत घोषित कर उन्हें अपना-अपना स्थान ग्रहण करने के लिए विवश किया।

इसके पश्चात् युवराज युधिष्ठिर ने एक लम्बा सा भाला लिया और भाला-संचालन की अपनी कलाबाज़ी और दक्षता दिखाकर लोगों को अचम्भित कर दिया। इस भाला-युद्ध कला में कोई भी राजकुमार उनके आगे न टिक सका।

सब राजकुमारों की युद्ध-विद्या के प्रदर्शन के पश्चात् द्रोणाचार्य ने खड़े होकर गम्भीर वाणी में कहा,''अब आप लोग अर्जुन का अस्त्र-कौशल देखें।''

तब अर्जुन ने गुरु द्रोणाचार्य की आज्ञा मान कर अपने धनुषवाण से अग्नि पैदा करके उसे वारुणास्त्र से जल उत्पन्न करके आग बुझा

दी। वायव्यास्त्र से आँधी उत्पन्न की, उसे पर्वतास्त्र एवं भौमास्त्र से पृथ्वी और बड़े-बड़े पहाड़ खड़े करके आंधी रोक दी। अन्तर्धानास्त्र के द्वारा सारे पर्वत लुप्त कर दिए।

इस प्रकार अर्जुन क्षणभर में लम्बा दिखाई देता था और क्षण में अन्यन्त लघुरूप में। उनके तीर से सूक्ष्म से सूक्ष्म निशाना भी कभी नहीं चूकता था। इसके अतिरिक्त खड्ग-युद्ध, गदा-युद्ध, रथ-संचालन की कला तथा धनुर्युद्ध के अनेक पैंतरे और हस्तलाघव दिखाए। अपना युद्ध कौशल दिखाने के पश्चात् अर्जुन ने इस रंड्गमण्डप में पधारे सब राजकमारों को ललकार कर कहा-''हे राजकुमारो! यदि किसी वीर को मुझ से भिड़ने की आकांक्षा हो तो इस मण्डप में आकर अपना युद्ध कौशल दिखाए।'' इन राजकुमारों में से कोई भी ऐसा वीर सामने नहीं आ सका जो अर्जुन की युद्ध-कला के सामने टिक सकता।

युद्ध-कौशल के इस रड्गमण्डप में अर्जुन को सब राजकुमारों से श्रेष्ठ घोषित करने के पश्चात् ठीक उसी समय इस रड्गमण्डप के मुख्य द्वार पर एक अद्वितीय एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी एक वीर की धीर-गम्भीर गर्जना सुनाई दी। उसने अर्जुन को ललकारते हुए कहा-''अर्जुन! अपने युद्ध-कौशल का इतना अधिक अभिमान न करना, यदि मुझे भी इस मण्डप में अपना युद्ध-कौशल प्रदर्शन करने का अवसर मिले तो मैं तुझ से कई गुणा अधिक युद्ध-कौशल दिखा सकता हूं। जब तक इस मण्डप के संचालक से आज्ञा नहीं मिलती, तब तक तुम अपने स्थान पर ही टिके रहो।''

फिर अर्जुन और दर्शकों के देखते ही देखते कर्ण ने एक सनसनाता हुआ तीर छोड़ा, जो आकाश में चक्र काटता हुआ सबके देखते-देखते एक सुन्दर-पुष्प हार का रूप धारण कर धृतराष्ट्र के गले में जाकर गिरा दिया, तत्पश्चात् ही उसने दोनों हाथ जोड़कर साष्टाँग प्रणाम किया तथा अन्य सभासदों को भी आदर सहित प्रणाम किया।

रड्गमण्डम के प्रवेश-द्वार से ही महावीर कर्ण ने मण्डप में उच्च आसन पर विराजमान अभिजात्य वर्ग के अतिथियों पर एक सरसरी दृष्टि से सिंहावलोकन किया तथा एक-दो आसनों पर बैठे द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को बेमन से प्रणाम किया, मानो इन गुरुओं के प्रति उसके मन में अधिक आदर-भाव न हो। कर्ण की गर्वोक्त ललकार सुनकर सब सभासद क्षणभर कुछ चिंतित और शीघ्र ही उसका रण-कौशल देखने के लिए उसकी ओर उत्सुकता से देखने लगे। इस प्रकार रड्गमण्डप के संचालक से आज्ञा लेकर कर्ण ने अर्जुन से भी बढ़कर रण-कौशल दिखाया। उस समय सभा-मण्डप में अर्जुन कुछ अपमानित सा होकर कर्ण की ललकार को स्वीकारते हुए कहा-''कर्ण! प्रथम तो तुम बिना बुलाए इस रंगभूमि में आए हो और अभिमान में चूर होकर बिना कोई प्रश्न पूछे अपनी ही प्रशंसा करते जा रहे हो, वीर पुरुष बोलते कम हैं। करके अधिक दिखाते हैं। यदि मुझसे टक्कर लेने की तुम्हारी प्रबल इच्छा है तो आओ! मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण कर दूंगा। अर्जुन की साहस भरी ललकार सुनकर कर्ण ने उत्तर दिया-''ऐ अर्जुन! जिस गुरु की शस्त्र-विद्या से तुम इतना इतरा रहे हो, उसके सामने ही मैं देखते ही देखते तुम्हारे गुरु की शिक्षा की धज्जियां उड़ा दूंगा, इसके साथ-साथ तुम्हें भी यमपुरी का द्वार दिखा दूंगा।''

इन दोनों वीरों को द्वन्द-युद्ध के लिए उन्मत देखकर गुरु कृपाचार्य ने कहा-''हे अज्ञात देश के वीर! अर्जुन महाराजा पाण्डु की धर्मपत्नी के उदर से उत्पन्न पुत्र एवं कौरव-वंश से सम्बन्धित राजकुमार हैं। यदि तुम्हारे मन में अर्जुन के साथ द्वन्द-युद्ध करने की प्रबल आकांक्षा हो, तो भी इसी प्रकार अपने माता-पिता और कुल का परिचय दो।'' आपका पूर्ण परिचय प्राप्त होने के पश्चात् ही यह निर्णय होगा कि तुम अर्जुन के साथ युद्ध कर सकते हो या नहीं; क्योंकि राजकुमार नीच-कुल के साथ न ही शिक्षा प्राप्त करते हैं और न ही युद्ध करते हैं।''

गुरु कृपाचार्य के आक्षेप से कर्ण का मुख लज्जा से म्लान तथा उसका बड़बोलापन एकदम शान्त हो गया। इस प्रकार तब कर्ण को चुप देखकर दुर्योधन ने सभामण्डप में खड़े होकर कहा-''हे आचार्य महोदय! शास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार युद्ध-कौशल को ही अधिक महत्व दिया जाता है न कि जात-पात को। यदि यह अज्ञात वीर युवक भी इस युद्ध कौशल-रड्गमण्डप में राजा के समतुल्य अपनी युद्ध-विद्या का प्रदर्शन दिखाने के लिए इच्छुक है, तो उसके ऐसे आग्रह का स्वागत होना चाहिए। फिर भी यदि अर्जुन राजा से भिन्न-पुरुष के साथ रण-भूमि में नहीं उतरना चाहते, तब मैं इसी समय कर्ण का अंग-देश के राजा के रूप में अभिषेक करता हूं।''

तदनन्तर दुर्योधन ने भीष्म पितामह एवं अपने पिता धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर राजपुरोहित के द्वारा राज्याभिषेक की सामग्री मंगाकर उसी समय कर्ण को सोने के सिंहासन पर बिठाया और 'अंग-देश' का राजा घोषित कर दिया। राज्याभिषेक की प्रक्रियाओं को निभाने के पश्चात् महाबली-भीम ने अपने कटाक्ष भरे प्रश्नों से कर्ण को बुरी तरह आहत और लज्जित कर दिया। कर्ण को निरुत्तर देखकर दुर्योधन ने भी कटाक्ष भरे प्रश्नों का उत्तर कटाक्ष से ही देना आरम्भ किया। इस प्रकार इन दोनों के वाद-विवाद से अधिक समय बीत गया, तत्पश्चात् सूर्य भगवान भी इन दोनों के निरर्थक वाद-विवाद से मुख मोड़कर अपने मार्ग अस्ताचल की ओर शीघ्रता से प्रस्थान करते देख कर सभा के संयोजकों ने भी समयानुसार ही रड्गमण्डप समारोह के समापन की घोषणा कर दी।

युधिष्ठिर को युवराज पद एवं वारणावत भेजने की प्रेरणा

रड्गमण्डप की परीक्षा में पाण्डवों ने अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य सब प्रकार की विद्याओं में कुरु-वंश के सब राजकुमारों से अपनी सर्वश्रेष्ठता की धाक प्रमाणित कर दी थी।

इस आयोजन के लगभग एक वर्ष बीतने के पश्चात् महाराज पाण्डु के ज्येष्ठ-पुत्र युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र ने युवराज-पद पर अभिषिक्त कर दिया। महाराज पाण्डु के युवावस्था में ही अकस्मात निधन के पश्चात् अब युवराज-पद पर युधिष्ठिर का ही वैधानिक अधिकार बनता था। भावी-सम्राट एवं युवराज-पद के लिए जो योग्यताएं अपेक्षित थीं, वे सब युधिष्ठिर में विद्यमान थीं। वे कुरु-वंश के सब राजकुमारों से ज्येष्ठ और श्रेष्ट तो थे ही इस के अतिरिक्त उनमें सत्यवादिता, सरलता, सहिष्णुता, दयालुता, अपनी प्रजा पर सौहार्द का भाव एवं अनुग्रह रखने वाले तथा वीरोचित गुणों से सम्पन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे।

युवराज-पद पर अभिषिक्त होने के पश्चात् युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के साथ मिलकर सौवीर-नरेश को पराजित कर वहां से बहुत सा धन लाकर अपने राज्य के कोशागार को धन-धान्य से समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त अर्जुन और भीमसेन आदि दोनों भाइयों ने मिलकर चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर अपने कुरुदेश की राजधानी में अथाह धनराशि का संग्रह करते रहे। इस प्रकार पाण्डु-पुत्रों के वीरोचित कार्यों को देखकर आंख के अन्धे तथा मन के खोटे स्थानापन्न राजा धृतराष्ट्र का मन जलन से दूषित होता चला गया। पाण्डवों की प्रतिदिन की वीरोचित गतिविधियों से चिंतित होने के कारण उसकी रात की निन्दिया और दिन का चैन नष्ट होने लगा। अपने पुत्र दुर्योधन के भविष्य के लिए भी चिंतित रहने लगे।

अभिषिक्त हो गया युधिष्ठिर, युवराज पद के स्थान पर,
गहरी चोट पहुंची थी दुर्योधन के मनभावन रुझान पर।
हस्तिनापुर से विस्थापन षड्यन्त्र था पाण्डवों के लिए,
गुणगान होने लगा था अधिक, वारणावत की शान पर।

दुर्योधन ने जब देखा कि पाण्डवों में भीमसेन की शक्ति का कोई अन्त नहीं है और अर्जुन का अस्त्र-शस्त्र ज्ञान तथा अभ्यास अद्भुत है। हस्तिनापुर की प्रजा का प्रेमभरा रुझान सत्यावादी युवराज युधिष्ठिर की ओर बढ़ता जा रहा है। इसी कारण धृतराष्ट्र और उसके ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन आदि कौरवों को अधिक जलन होने लगी थी। जब कौरव किसी भी क्षेत्र में पाण्डवों से आगे नहीं निकल सके तो दुर्योधन ने अपने प्रिय मित्र कर्ण, जिसे उसी ने ही अंग देश का राजा बनाया था और गन्धार देश के राजा 'सुबल' के पुत्र शकुनि, जो धृतराष्ट्र की धर्मपत्नी गान्धारी के भ्राता थे, से मिलकर पाण्डवों को मारने के बहुत उपाय किए, परन्तु पाण्डव उनके सभी षड़यन्त्रों से सुरक्षित रहे। नीति विशारद विदुर एवं अपनी माता कुन्ती के मार्गदर्शन में रहकर कौरवों द्वारा बिछाए गए जाल एवं षड़यन्त्रों को किसी पर प्रकट भी नहीं होने दिया। नागरिक और पुरवासी पाण्डवों के गुणों को देखकर भरी सभा में उनके उच्च चरित्र का बखान करने लगे। वे जहां कहीं भी सभा और नागरिक अभिनन्दन मंचों पर जाते, वहीं इस बात पर ज़ोर डालते कि पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को राज्य मिलना चाहिए। धृतराष्ट्र को तो पहले ही अन्धे होने के कारण राज्य नहीं मिला, अब वह राजा कैसे हो सकते हैं। शान्तनु नन्दन भीष्म भी भीषण प्रतिज्ञापरायण हैं, वे पहले भी राज्य अस्वीकार कर चुके हैं जो अब कैसे ग्रहण करेंगे। इसलिए उचित यही है कि सत्य और करुणा के पक्षपाती, पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को ही राजा बनाया जावे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके राजा होने से भीष्म और धृतराष्ट्र आदि को न ही असुविधा होगी और न ही आपत्ति होगी।

प्रजा की यह बात सुनकर दुर्योधन और भी अधिक जलने-भुनने लगा। प्रतिष्ठित नागरिकों और विद्वानों की आलोचनाएं सुनकर और कुढ़कर वह अपने पिता धृतराष्ट्र के पास गया और उनसे कहने लगा, 'पिता जी! लोगों के मुंह से बड़ी बुरी बकझक सुनने को मिल रही है। वे भीष्म को और आपको हटाकर पाण्डवों को राजा बनाना चाहते हैं। भीष्म को तो इसमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु हम लोगों के लिए यह बहुत बड़ा खतरा है। पहले ही आप से भारी भूल हो गई है, पाण्डु ने राज्य स्वीकार कर लिया और आपने अपनी अन्धता के कारण मिलता हुआ राज्य भी गंवा दिया। यदि युधिष्ठिर को राज्य मिल गया तो फिर यह उन्हीं की वंश-परम्परा में चलेगा और हमें कोई नहीं पूछेगा। हमें और हमारी सन्तान को दूसरों के आश्रित रहकर नरक के समान कष्ट भोगना पड़ेगा। इस प्रकार कौरवों का नाम लेने वाला भी कोई नहीं रहेगा। इसके लिए आप कोई युक्ति सोचिए। यदि पहले ही आपने राज्य ले लिया होता तो कहने की कोई बात ही न होती। अब क्या किया जाए'? धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन की युक्तिसंगत बात सुनकर असमंजस में पड़ गए।

राजा धृतराष्ट्र के मन्त्रिमण्डल के एक कूटनीति विशेषज्ञ कणिक नामक मन्त्री ने भी दुर्योधन की बातों का समर्थन करते हुए कहा, महाराज! ''आप कोई सुन्दर सी युक्ति सोचकर पाण्डवों को यहां से किसी अन्य क्षेत्र की ओर भेज दीजिए, न रहेगा बांस और न बजेगी बाँसुरी।''

धृतराष्ट्र सोच-विचार में पड़कर गम्भीर मुद्रा बनाकर कहने लगे-मेरे शुभचिन्तक सहयोगियो! मेरे भाई पाण्डु बड़े दयालु और धर्मात्मा थे। सबके साथ और विशेष रूप से मेरे साथ वे बड़ा उत्तम व्यवहार करते थे। सब कुछ मुझसे कहते और मेरा ही राज्य कहकर शासन सम्भालते और चलाते थे। उनका पुत्र युधिष्ठिर भी वैसा ही धर्मात्मा, गुणवान, यशस्वी और वंश के अनुरूप है। हम लोग बलपूर्वक उसे वंश परम्परागत राज्य के युवराज पद से कैसे पदच्युत कर सकते हैं? विशेष करके जबकि उसके बड़े-बड़े सहायक हैं। भीष्म और विदुर तो उनके विशेष सहायक हैं। पाण्डु ने अपने शासनकाल में मन्त्री, सेना और वंश परम्परा का खूब भरणपोषण किया है। सारे नागरिक

युधिष्ठिर से सन्तुष्ट रहते हैं। वे बिगड़कर हम लोगों को मार डालें तो? दुर्योधन अपने पिता की भयातुर बातों की चिन्ता किए बिना कहने लगा-पिता जी! इस भावी आपत्ति के विषय में मैंने पहले ही सोचकर एक अर्थपूर्ण और सुनियोजित योजना तैयार की है और प्रजा की प्रसन्नता और सम्मान प्राप्त करने के लिए भी कारगर कार्यक्रम तैयार किए जा रहे हैं। ऐसे कार्यक्रमों से वे प्रधानतया हमारी ही सहायता करेंगे। राज्य का कोष और कोषाध्यक्ष, मन्त्रीमण्डल मेरे अधीन है ही। इस समय यदि आप नम्रता के साथ पाण्डवों को ऐसे दूर-दराज राज्य की सीमा की ओर भेज दें तो मैं अपने राज्य पर पूरी तरह नियन्त्रण कर लूंगा। उसके बाद वे आ जाएं तो कोई हानि और आपत्ति की कोई विशेष बात नहीं रहेगी।

दुर्योधन की योजनाओं को सुनकर द्विविधा में पड़ते हुए धृतराष्ट्र कहने लगा - बेटा! चाहता तो मैं भी यही हूँ कि तुझे ही राज्य सौंप दूँ। परन्तु यह पापपूर्ण बात मैं भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर जैसे विद्वानों से किस प्रकार प्रकट करूँ जो न ही हमारे हक में है और न ही सर्वसम्मत है। उनका कौरव और पाण्डवों पर एक समान प्रेम और अधिकार है। यह विषमता उन्हें अच्छी नहीं लगेगी। यदि हम ऐसा करेंगे तो हमें उन सब कौरवों के अतिरिक्त पाण्डवों के समर्थकों और जनता का कोपभाजन बनना पड़ेगा।

अपने पिता की भयभीत करने वाली बातों को अनसुना करके दुर्योधन ने कहा -''पिता जी! भीष्म तो मध्यस्थ हैं। अश्वत्थामा मेरे पक्ष में हैं, इसलिए द्रोण उसके विरुद्ध नहीं जा सकते। कृपाचार्य अपनी बहन, बहनोई और भानजे को कैसे छोड़ेंगे। रह गई बात विदुर की, वे छिपे-छिपे ही पाण्डवों से मिलते रहते हैं। परन्तु वे अपनी योजना में निपट अकेले हैं और वे अकेले होते हुए क्या कर लेंगे? इसलिए आप बिना सन्देह के कुन्ती और पाण्डवों को हस्तिनापुर से दूर पटक दीजिए तभी मेरी आकांक्षा पूरी होगी।''

अपने पिता को यह योजना समझा कर वहां से चला गया। यह कहकर दुर्योधन तो प्रजा को प्रसन्न करने में लग गया और धृतराष्ट्र ने ऐसे कुछ चतुर मन्त्रियों को नियुक्त किया जो ऐसे स्थान की प्रशंसा करें जिससे पाण्डव वहां जाने के लिए लालायित हो जाएं। कोई उस सुन्दर और सम्पन्न देश की प्रशंसा करता तो कोई नगर की। कोई वहां के मेले का बखान करते नहीं अघाता। इसी प्रकार दुर्योधन के एक विशेष सहायक मन्त्री ने वारणावत नगर की प्राकृतिक नयनाभिराम सौन्दर्य की बहुत प्रशंसा की। वारणावत की अत्यधिक विशेषता सुनकर पाण्डवों का मन कुछ-कुछ वहां जाने के लिए उत्सुक हो गया। अवसर देखकर धृतराष्ट्र ने कहा,''प्यारे पुत्रो! कुछ लोग मुझ से भी वारणावत की बड़ी प्रशंसा करते रहते हैं। यदि तुम लोगों ने भी बड़ी प्रशंसा सुनी होगी और आप सब वहां जाने के इच्छुक हों तो अवश्य जाओ। आजकल वहां मेले की बड़ी धूम है। देखो, वहां तुम लोग देवताओं, ब्राह्मणों और नागरिकों को खूब दान-पुण्य का कार्य सम्पन्न कर उत्सवों, पर्वों आदि का आनन्द उठाने के साथ-साथ वहां के दर्शनीय सरोवरों में जल-विहार कर फिर यहां लौट आना।''

युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की चाल तुरन्त समझ गए। उन्होंने अपने को असहाय समझ कर कहा,''आपकी जैसी आज्ञा, हमें क्या आपत्ति है''। उन्होंने कुरुवंश के भीष्म, सोमदत्त आदि बड़े-बूढ़ों, द्रोणाचार्य आदि तपस्वी ब्राह्मणों तथा गान्धारी आदि माताओं से अपने साथियों सहित वारणावत जाने की आज्ञा मांगी। आप लोग प्रसन्न मन से हमें आशीर्वाद दें कि वहां पाप हमारा स्पर्श न कर सके'। सब ने कहा, सर्वत्र तुम्हारा कल्याण हो। किसी से कोई अनिष्ट की आशंका न हो। शुभ और मंगल हो।

जब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को वारणावत जाने की आज्ञा दे दी तब दुरात्मा दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने अपने मन्त्री पुरोचन को एकान्त में बुलाया और उसका दाहिना हाथ पकड़कर कहा,'भाई पुरोचन! इस पृथ्वी को भोगने का जैसा मेरा अधिकार है, वैसा ही तुम्हारा भी है। तुम्हारे सिवा मेरा ऐसा और कोई विश्वासपात्र और सहायक नहीं है, जिसके साथ मैं इतनी गुप्त सलाह कर सकूं। मैं तुम्हें यह काम सौंपता हूं कि मेरे शत्रुओं की जड़ उखाड़ फेंको। होशियारी से काम करना, किसी को मालूम न हो। पिता जी की आज्ञानुसार पाण्डव कुछ दिन तक वारणावत में रहेंगे। तुम पहले ही वहां चले जाओ। वहां नगर के किनारे पर सन, सर्जरस और लकड़ी आदि से ऐसा भवन बनवाओ जो आग से भड़क उठे। उसकी दीवारों पर घी, तेल, चर्बी और लाख मिली हुई मिट्टी का लेप करा देना। पाण्डवों को परीक्षा करने पर भी इस बात का पता न चले। उसी में कुन्ती, पाण्डव और उनके मित्रों को रखना। वहां दिव्य आसन, वाहन और शय्या सजा देना। फिर वे विश्वासपूर्वक निश्चिन्त होकर सो जाएं तो दरवाज़े पर आग लगा देना। इस प्रकार जब वे अपने रहने के घर में ही जल जाएंगे तो हमारी निन्दा भी न होगी'। पुरोचन ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की।

तब उक्त मन्त्री ने पाण्डवों को जलाकर मौत के घाट उतारने के लिए लाक्षागृह बनाने की सामग्री लेकर शीघ्रता से तेज़गति की खच्चर गाड़ियों में लाद कर वारणावत के लिए प्रस्थान किया। वहां जाकर उसने दुर्योधन की आज्ञानुसार नियोजित महल तैयार कराया। ■

क्रमशः .....

विपाशा परिसर-बबेली, कुल्लू।

लाहुल में महिलाओं की स्थिति

सुनीता कटोच

किसी भी समाज व संस्कृति के विकास में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। पुरुष और स्त्री प्रकृति के दो रूप हैं जिनका आपसी तालमेल व संतुलन प्रकृति को और भी निखारता है। हम जानते हैं कि सदियों से भारतीय समाज पुरुष प्रधान ही रहा है। कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाये तो स्त्री आज तक पुरुष के बनाए खोल से बाहर नहीं निकल पायी है। मैं जनजातीय क्षेत्र लाहुल -स्पीति के लाहुल घाटी में महिलाओं की सामाजिक स्थिति की ओर आप सबका ध्यान केन्द्रित करना चाहूंगी। भारत में हो या चाहे दुनिया के किसी और कोने में बसी जनजातियाँ। सभी जनजातियाँ हमेशा से अपनी अलग संस्कृति, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था एवं रीति रिवाज़ों के लिए पहचाने जाते हैं। कठिन परिस्थितियों में जीने की तमाम आकाँक्षाएं एवं जीवटता लिए कबायली संस्कृति भी स्त्री और पुरुष के भेद से अछूती नहीं है। बावजूद इसके मुझे लाहुल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति अन्य समाज से काफी अच्छी और संतोषजनक लगती हैं। समाज पुरुष प्रधान ही है। पर महिलाओं ने अपने लिए एक सम्मान जनक स्थिति खुद अपनी मेहनत और लग्न से हासिल की है।

किसी भी समाज की आर्थिक व्यवस्था उस समाज की आधारशिला होती है। लाहुल-स्पीति में महिलाएं घर के काम काज के अलावा खेतों के कार्यों की पूरी ज़िम्मेदारी उठाती हैं। पशुओं के रख रखाव से लेकर कौन से खेत में कौन सी फसल और कितनी फसल उगाई जाए ये सब काम महिलाएं ही करती हैं। उन सब के लिए ये सब कार्य उतने ही सहज हैं जितना कि नदी का बहना या चाँद और सूरज का उगना। खेतों में वो मिट्टी हो जाती हैं, बीज बन जाती हैं, लहलहाती फसल बन जाती हैं और अपने घर के लिए लक्ष्मी या अपनी बोली में कहें तो लछमी बन जाती हैं। यह एक सामाजिक व्यवस्था है कि जिस वर्ग का उस समाज की आर्थिक उन्नति में योगदान ज़्यादा होगा उस वर्ग का सामाजिक स्थान भी ऊंचा होता है। लाहुल-स्पीति में महिलाओं को यह स्थान मांग के नहीं मिला है। यह उन्होंने खुद अपने जुझारूपन से हासिल की है।

शिक्षा किसी भी समाज के उन्नति का द्वार माना जाता है। पुरातन काल को यदि छोड़ दिया जाए, हालिया समय में लाहुल-स्पीति में महिलाओं को शिक्षा से वंचित नहीं रखा गया। बेशक घर में यह कहा जाता हो कि तुम्हें हर काम सीखना है क्योंकि तुम्हें दूसरों के घर जा कर उस घर की नींव को पक्का करना है परन्तु बदलते वक्त में स्त्रियों को शिक्षा से वंचित नहीं रखा गया। इसे मैं अपने बुज़ुर्गों की दूरदृष्टि या प्रगतिशील दृष्टि ही कहूँगी कि जब भारत के अन्य हिस्सों के समाज महिलाओं को घूँघट या पर्दा प्रथा में कैद करना चाहती थी वो महिलाओं को शिक्षा देने के हक में आगे आए। जब समाज की दोनों धाराएं शिक्षित हों तो समाज अपने आप उन्नति करता है। उस समाज को आगे बढ़ने के लिए धक्का देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। आज हम जानते हैं कि लाहुल की लड़कियां/महिलाएं अपनी काबिलियत के अनुसार हर उस उच्च पद पर आसीन हैं जिनकी वो हकदार हैं। इसके साथ-साथ कृषि क्षेत्र में भी आधुनिक खेती की तकनीकों की पूरी जानकारी रखती हैं और पुरुषों से कंधे से कंधा मिला कर काम करती हैं। लाहुल-स्पीति में यह भी देखा गया है कि ज़्यादातर सरकारी योजनाएं महिला मंडलों के द्वारा ही घर-घर तक पहुंचाई जाती हैं और सफल होती हैं। पिछले एक दशक में जहाँ पुरुष साक्षरता दर 82.82 से बढ़ कर 85.69 हो गई है वहीं महिला साक्षरता दर 60.70 से बढ़ कर 66.84 हो गई है।

धार्मिक कार्यों में भी महिलाओं की भागीदारी रहती है। चाहे देवी-देवताओं के घर या गाँव में आने पर स्वागत की तैयारी हो या त्यौहारों के समय निभाए जाने वाले धार्मिक रीति रिवाज़। महिलाओं के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। इसके अलावा यह समाज दहेज प्रथा या महिलाओं के प्रति अन्य सामाजिक उत्पीड़न से आज़ाद है। कन्या भ्रूण हत्या हमारे समाज में ना के बराबर है। 2011 की जनगणना के अनुसार लाहुल-स्पीति में 1000 पुरुषों के प्रति 1033 महिलाएं हैं।

उपरोक्त लिखी सभी बातें हमारे समाज के एक रूप को दिखाती हैं और उसमें महिलाओं की जो सम्मानजनक सामाजिक स्थिति उकेरी गयी है वो है तो सत्य ही पर इसके साथ-साथ इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है हर समाज में बहुत सारी परतें होती है। हमें हर परत पर चर्चा करनी चाहिए। महिलाओं को जो सामाजिक स्थिति हमारे समाज में मिली वो मुझे उनकी अपनी

मेहनत से कमाई स्थिति लगती है। इसका एक कारण उनका आर्थिक उन्नति के ढाँचे में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाना हो सकता है। अगर हम कुछ साल पीछे की ओर देखें तो बाल-विवाह या बहु पति प्रथा आदि कुछ प्रथाएं हमारे समाज में भी प्रचलित थी। चाहे यह प्रथाएं हमारी सामाजिक मजबूरी रही हों पर एक बच्ची पर या एक महिला पर यह ज़्यादती ही थी। बेशक इसके भुक्त-भोगी पुरुष भी रहे होंगे परन्तु एक स्त्री पर घर को एकजुट बनाए रखने की ज़िम्मेदारी लादने की इस परम्परा ने उसके अस्तित्व पर एक प्रश्न चिन्ह ज़रूर लगाया होगा। बेशक यह प्रश्न चिन्ह गोबर के उपलों की तरह जल कर राख हो गयी होंगी पर एक धुआं सा हर संवेदनशील स्त्री के मन में ज़रूर उठा होगा। इसे हम बेशक यह कह कर जस्टिफाई कर सकते हैं कि यह प्रथा एक औरत का अपना चुनाव होता था। परन्तु इस बात को मानने से हमें संकोच नहीं करना चाहिए कि महिलाएं शायद लाहुल में कभी अभिव्यक्त ही नहीं हो पाईं। शायद उन्हें मांगने या अपनी बात रखने की उतनी खुली छूट नहीं थी। हमारी लोक गाथाएँ इस बारे में बहुत कुछ कहती हैं। जैसे नीचे लिखे दो सुगिलि जो उस समय की औरतों की दशा को उजागर करती हैं:-

''बणा बुटेरी आगा लोको दुनिया हेरी
मेरी मनेरी आगा कुणू सुपूता हेरी''

(यानी कि वन या जंगल में लगी आग को पूरी दुनिया देख सकती है, पर जो आग मेरे मन में लगी है उसे कौन समझ सकता है)

उसी तरह एक और -

''माई बाबूरी बगुते लंबी लंबी सू ओ ओ
छ्वाड़े ओ
भाया भ्रौजी रे बगुते ओः
हाँ ओः
बाता कंटेरी डाड़ी हो ओ ओ
बाता कन्टेरी डाड़ी चुंगी-चंगी ओ ओ नई ओ
गउंले प्यौके री नागुरी ओ
हाँ ओ भंगा तमाकू पीउंले ओः ओः''

(सौजन्य-सतीश लोप्पा जी)

इसके साथ-साथ हम यह देखते हैं कि जो अविवाहित महिलाएं होती हैं जिन्हें हम अपनी बोली में ''धेहणि'' कहते हैं या फिर तलाकशुदा अविवाहित औरत की स्थिति उनके परिवार के सांस्कृतिक या नैतिक मूल्यों पर निर्भर करता है। उनका आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना क्या उन्हें एक अच्छी सामाजिक स्थिति भी प्रदान कर सकता है? यह एक ताज़ा बहस का मुद्दा है। क्या ''छेती'' में मिला खेत का एक टुकड़ा उनकी तमाम ज़रूरतों को पूरी करके उन्हें सामाजिक सुरक्षा प्रदान कर सकती हैं। वो जैसी सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक सुरक्षा चाहते हैं क्या हमारा समाज उन्हें यह सब देने में सक्षम या तैयार है? क्या अन्य समाज की तरह सम्पत्ति का हक़ देना उन महिलाओं की स्थिति में सुधार ला सकता है? यह ऐसे मुद्दे हैं जिन पर लाहुल की महिलाओं को खुद अभिव्यक्त होना पड़ेगा। हाँ एक प्रश्न मेरे मन में यह भी उठता है कि इतने खुले और आरामदायक माहौल में रहने के बावजूद लाहुल की महिलाएं अभिव्यक्त क्यों नहीं हो पाती? शायद खेतों की मिट्टी और जुराबों के धागों में ही वो अपनी सारी कुंठाएं निकाल देती हैं।

अजेय जी की कविता ''ब्यूंस की टहनियां'' हमें इन औरतों की दशा से भली भांति परिचित कराती है। उनकी कविता की कुछ पंक्तियाँः-

हम ब्यूंस की टहनियाँ हैं
रोप दी गई रूखे पहाड़ों पर।
छोड़ दी गई बेरहम हवाओं के सुपुर्द
काली पड़ जाती है हमारी त्वचा
खत्म न होने वाली सर्दियों में
मूर्छित, खड़ी रह जाती है हम
अर्द्ध निद्रा में
मौसम खुलते ही
हम चूस लेती हैं पत्थरों से
जल्दी-जल्दी खनिज और पानी।

यह सच है कि लाहुली समाज में महिलाओं की स्थिति अन्य क्षेत्रों की महिलाओं से बहुत बेहतर है। पर परतें उधेड़ी जाएं तो स्थिति मिली जुली सी लगती है। ना अच्छी ना खराब यानी संतोषजनक। अब यह संतोषजनक स्थिति कितनी देर तक रहती है यह बहुत कुछ इस पीढ़ी या आने वाली पीढ़ी पर निर्भर करती है। मैंने यह महसूस किया या अक्सर मैं देखती हूँ कि लाहुल की लड़कियां या महिलाएं बहुत से मुद्दों पर अक्सर चुप्पी साध लेती हैं। वो अभिव्यक्त होना ही नहीं चाहती । क्या यह एक दबाव है। यानी सामाजिक दबाव, अभिव्यक्त होने पर रिजेक्शन का दबाव या फिर पुरुष समाज का अदृश्य खोल। या फिर हमारे समाज द्वारा तैयार किया हुआ वातावरण जिसमें स्त्रियों की अभिव्यक्ति को काफी हीन दृष्टि से देखा जाता है। चाहे वो हीन दृष्टि से देखने वाली एक महिला ही क्यों ना हो। मुझे ऐसा लगता है कि हमारा समाज महिलाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के लिए अभी तैयार नहीं हैं। ■

सोच सदा सकारात्मक ही रहे

नवङ तन्ज़िन कटोच

सकारात्मक विचार जीवन का आधारभूत मर्म है। इस मर्म में अनेक तथ्य सन्निहित हैं, जिनके प्रकटीकरण से जीवन सुरभित, सुगन्धित एवं सौंदर्य का प्रतीक एवं पर्याय बन जाता है। यह जीवन को ऊर्जा से भर देता है। ऊर्जा से भरा हुआ जीवन अपने चरम पर विकसित होता है। अनेकों अनेक गुप्त एवं सुप्त आयाम खुलते हैं, जिन के कारण जीवन आशा, उत्साह, उमंग एवं उपलब्धि से भर जाता है। यह ऐसी उपलब्धि दे जाता है, जिस की कल्पना भी हम नहीं कर पाते हैं। सकारात्मक विचार शारीरिक एवं भावनात्मक विकास की बेजोड़ कड़ी है।

सकारात्मक विचार से मन प्रसन्न होता है एवं मन में उत्साह, उमंग भर उठता है। मन प्रकाशित हो उठता है तथा विचारों एवं कल्पनाओं की ऊँची उड़ान भरता है। विचार श्रेष्ठ हों एवं कल्पनाएं सुखद हों तो भी ऊर्जा न होने से ये पंखविहीन होकर फड़फड़ाने लगते हैं एवं अपने इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। ऊर्जा ही है जो इसे अपनी सीमित सीमाओं से निकाल कर अनन्त आसमान की ओर उछाल देती है। फिर वहाँ से विचार अपने समधर्मी विचारों के संग मिल कर पुष्ट होते हैं, बलशाली होते हैं एवं इन सकारात्मक विचारों का सघन बादल बन जाते हैं। जो सभी व्यक्ति इन विचारों के सम्पर्क-सान्निध्य में आता है, इन विचारों से सराबोर हो जाता है एवं अनायास ही नए एवं मौलिक विचारों से भर जाता है। यह सब सकारात्मक विचारों के द्वारा ही सम्भव है।

नकारात्मक विचार हमारे अन्दर की ऊर्जा को अवशोषित कर हमें कमज़ोर और दुर्बल बनाते हैं। इससे हमारा मन अंधकार से भरकर छटपटाने लगता है। यह अंधकार इतना सघन एवं लिजलिजा होता है कि उससे दुर्गन्ध फैलने लगती है, मन घुटन से भर जाता है।

नकारात्मक विचार गुड़ में मक्खियों के समान ऐसे चिपक जाते हैं कि वहाँ फँसे पड़े रह जाते हैं और चाहते हुए भी निकल नहीं पाते। बड़ा भयावह मंज़र होता है। जीवन की सारी गतिविधियाँ सिमट कर रह जाती है। इसका एकमात्र समाधन है-सकारात्मक विचार।

सकारात्मक विचार की दो अवस्थाएँ होती हैं। एक को पॉज़िटिव कॉग्निटिव स्टेट (सकारात्मक संज्ञानात्मक अवस्था) एवं दूसरे को पॉज़िटिव इमोशनल स्टेट (सकारात्मक भावनात्मक अवस्था) कहते हैं। संज्ञानात्मक अवस्था के अन्तर्गत-आशा, आशावादिता, आत्मविश्वास, आत्मिक क्षमता, साहस, प्रज्ञा, द्रष्टाभाव तथा लक्ष्य के प्रति अटूट निष्ठा का भाव आते हैं। सकारात्मक भावनात्मक अवस्था में व्यक्ति स्वयं में पवित्र एवं उत्कृष्ट भावनाओं को अनुभव करता है। इसके अंतर्गत प्रसन्नता एवं अनुभूतियाँ आती हैं।

सकारात्मक विचारों से एक नवीन आशा का उद्भव होता है, जिस से वह सदा आगे की ओर अग्रसर होने लगता है। आशा एवं उत्साह जीवन में विकास के कई आयाम खोलते हैं; जबकि निराशा इसको अवरुद्ध कर देती है। इससे अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का उद्भव होता है। संदर्भ में नार्मन कज़िन्स की चर्चित किताब 'दि बॉयोलॉजी ऑफ होप एंड दि हीलिंग पावर ऑफ द ह्यूमन स्पीरिट' में उल्लेख किया गया है कि आशा हमारे स्नायु संस्थान को सुदृढ़ एवं मज़बूत बनाती है। इससे इलेक्ट्रोकेमिकल कनेक्शन (विद्युत रसायन संचार संबंध) की प्रक्रिया में बढ़ोतरी होती है। इसके बढ़ने से शारीरिक एवं मानसिक प्रतिरक्षा प्रणाली सुचारू रूप से कार्य करती है। शारीरिक प्रतिरक्षा प्रणाली के सुदृढ़ होने से सर्दी, जुकाम, खाँसी, सिरदर्द, पेटदर्द एवं अन्य रोगों से व्यक्ति स्वयं का बचाव करते हैं। साइको इम्युनिटी के बढ़ने से चिंता, अवसाद अपराधबोध, निराशा, हताशा, कुंठा, आक्रामकता आदि से मुक्ति मिलती हैं। इस लिए नॉर्मन कज़िन्स कहते हैं कि व्यक्ति को सदा आशा एवं उत्साह से सराबोर रहना चाहिए।

आशावादी दृष्टिकोण से जीवन की अनेक समस्याओं, कठिनाइयों, एवं चुनौतियों से उबर कर व्यक्ति आगे बढ़ने का साहस संजो पाते हैं। इस विषय पर एक न्यूरोसाइन्टिस्ट का कहना है कि आशावादिता हमारे मस्तिष्क के भावनात्मक केन्द्र एमाइग्डेला को सक्रिय करती है। इससे यह केन्द्र सेरोटोनीन नामक हॉर्मोन स्रावित करता है, जिससे अवसाद दूर होता है। अवसाद नकारात्मक सोच का स्रोत

है। अवसाद की कमी आने से सकारात्मक सोच की दिशा में सार्थक बदलाव आता है। इस संदर्भ में मनोविज्ञानी वांदूरा का कहना है कि आशा एवं उत्साह का संबंध मस्तिष्क के फ्रंटल एवं प्रीफ्रंटल लोब से होता है। उत्तम विचार इन केन्द्रों को क्रियाशील करते हैं। इससे कैटेकोलामाइन नामक एक हार्मोन का स्राव बढ़ जाता है, जो हमारे शरीर में तनाव को दूर करता है। तनाव से अनेक प्रकार की पाप भावना एवं मनोग्रंथियाँ पैदा होती हैं। लेकिन श्रेष्ठ विचारों के द्वारा इन चीज़ों से मुक्ति पाई जा सकती है।

सकारात्मक विचार के अंतर्गत हमारे अन्दर सेल्फ इफीकेसी (आत्मक्षमता) बढ़ती है। इसका सीधा संबंध हमारी उन सुप्त एवं गुप्त क्षमताओं की ओर है, जिनसे हम सर्वथा अपरिचित होते हैं। यह क्षमता हमें यह सुदृढ़ विश्वास प्रदान करती है कि हम अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं और ऐसा करने से हमें कोई रोक नहीं सकता है। हमारे बढ़ते कदमों को कोई थाम नहीं सकता, हम किसी भी बाधा एवं कठिनाई को चीरते हुए आगे अग्रसर हो सकते हैं।

इस क्षमता को मेडक्स ने 'ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ पॉज़िटिव साइकोलोजी' में उल्लेख करते हुए कहा है कि इन्सान यदि सतत् श्रेष्ठतम् सोच एवं विचार का अभ्यास कर ले तो उस के अन्दर एक ऐसी कुशलता का प्रादुर्भाव हो जाता है, जो उसे किसी भी प्रकार की कठिन से कठिन परिस्थितियों से निकाल कर सफलता की सुनिश्चित राह की ओर बढ़ा देती है।

सकारात्मक विचारों से पवित्र भावना का गहरा सम्बन्ध है। अच्छे विचार होंगे तो भाव भी अच्छे होंगे। बुरे और कुटिल विचारों के अन्दर अच्छे भाव पनप नहीं सकते हैं, मुरझा जाते हैं। श्रेष्ठ विचार संवेदनशील भावनाओं को सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान करते हैं। ताकि भावनाएं अपनी सीमाओं का अतिक्रमण न कर सकें। दूसरी ओर भावनाएं विचारों को पुष्ट एवं सबल बनाती हैं, कल्पनाओं को नया पंख प्रदान करती हैं, ताकि अनंत आकाश में वे अन्तहीन यात्रा कर सकें और वहाँ से कल्याणकारी विचारों को मानव मन में उतार सकें। भावनाओं के बिना विचार शुष्क, दुर्बल एवं निस्तेज हो जाते हैं। कोमल भावनाएं इनसान के अन्दर न केवल अच्छे विचारों को जन्म देती हैं, बल्कि प्रसन्नता व अनगिनत अनुभूतियों से भर देती हैं।

सकारात्मक विचार जीवन को एक नया आधार प्रदान करने के साथ बहुआयामी विकास की राह खोलते हैं। इससे मन प्रकाशित हो उठता है और प्रकाशित मन के अन्दर शंका, संदेह, भ्रम आदि की कोई गुंजाइश नहीं होती है। पाँच वर्ष तक सतत् सकारात्मक विचार करने से हम मौलिक विचारों एवं नवीनतम योजनाओं के मालिक बन सकते हैं। यह जीवन की सफलता एवं उपलब्धियों का स्रोत है अतः सदा सकारात्मक विचारों का सहारा लेना चाहिए। ■

गाँव व डा० सेऊबाग,
ज़िला कुल्लू (हि० प्र०)।

इस लेख के प्रायोजक ▶

BHAGWAN SINGH & CO.

Manali, Distt. Kullu, HP Ph: 9816042798

A company which is always ready to serve the farmers of Lahul valley and the cultivators of the country with quality and variety seeds of potato and also ensures the growers and users of seeds with better long term returns

पतितपावन नीलकंठ महादेव धाम की यात्रा

विकास ओथङ्बा

© R.K Telangba

नीलकंठ सर

भगवान् शिव को समर्पित नीलकंठ धाम एवं पवित्र झील स्वङ्लो पट्टन घाटी के गांव च़ोखङ-नैनगाहर के गाहर में नैसर्गिक सौन्दर्य और अलौकिक वातावरण के मध्य अवस्थित है। इस धाम की खोज के संबन्ध में जनश्रुति है कि प्राचीन काल में गद्दी समुदाय से संबंधित किसी व्यक्ति को भगवान् शिव ने स्वप्न में दर्शन दिए और कहा कि मैं साक्षात यहां पर विराजमान हूँ। तत्पश्चात पूरे इलाके की छानबीन करने के बाद उस व्यक्ति ने उस पवित्र धाम की खोज की लेकिन प्राकृतिक कारणों के चलते आज उस धाम एवं झील के सिर्फ अवशेष ही बच पाएं हैं लेकिन उससे कुछ दूरी पर अवस्थित पवित्र झील जिसे वर्तमान में नीलकंठ धाम के नाम से जाना जाता है को भी वही दर्जा हासिल है अर्थात स्वयंभू भगवान् शिव इस धाम में निवास करते हैं। ऐसी लोगों की धारणा है। हर साल सैंकड़ों की संख्या में यात्री विभिन्न प्रकार की मनोकामनाएं लिए इस पवित्र धाम की यात्रा कर धन्य हो जाते हैं लेकिन प्राचीन स्वङ्लो मान्यतानुसार जैसे डड़िउ कैलाश यात्रा मुख्यतः संतान प्राप्ति के लिए होती है वैसे ही यह यात्रा मुख्यतः चुर-पुर (घर में हमेशा दूध, दही एवं घी का भण्डार बना रहे अर्थात दूध की धारा सदा बहती रहे) के लिए होती है और अवश्य फली भूत होती है। तीन दिन तक चलने वाली यह यात्रा कमरिङ गांव से शुरू होकर च़ोखङ-नैनगाहर गांव होते हुए पवित्र झील एवं नीलकंठ महादेव धाम पहुंचकर सम्पन्न होती है।

पहला दिन प्राचीन समय में यह यात्रा पैदल चलकर कमरिङ गांव से प्रारम्भ होती थी लेकिन अब सम्पर्क सड़क के बन जाने के पश्चात यात्री बस या निजी वाहनों के द्वारा अपनी यात्रा प्रारम्भ करते हैं। बड़ी गाड़ियों के लिए सड़क अभी सिर्फ च़ोखङ गांव तक ही है लेकिन छोटी गाड़ियों के माध्यम से नैनगाहर तक पहुंचा जा सकता है। अर्थात यात्री क्रमानुसार गांव कमरिङ, च़ोखङ, छ़ोगज़िङ, ग्वाड़ि होते हुए गांव नैनगाहर पहुँचते हैं और वहीं पर रात्रि विश्राम करते हैं।

दूसरा दिन - नैनगाहर गांव में रात्रि विश्राम के पश्चात् सुबह होते ही यात्री अपनी आगे की यात्रा आरम्भ कर देते हैं।

मान्यता है कि इस यात्रा में स्त्रियों का जाना निषिद्ध है इसके अतिरिक्त छाता लेकर जाने की भी मनाही है क्योंकि इससे यात्रा मार्ग में कई अनहोनी घटनाएँ घटती हैं। यात्री अपने भोजन व सोने के लिए राशन, बिस्तर इत्यादि साथ लेकर जाते हैं।

प्राकृतिक नज़ारों का आनन्द लेते हुए यात्री अब अल्यास नामक स्थान पर पहुँचते हैं। इसी स्थान से पवित्र नीलकंठ झील के पीछे अवसित कैलाश पर्वत तुल्य हिमाच्छादित पर्वत की चोटी का नयनाभिराम दृश्य दृष्टिगोचर होता है। यात्री बताते हैं कि इस हिमाच्छादित पर्वत शिखर का सौन्दर्य सूर्य उदय और सूर्यास्त के समय देखने योग्य होता है। इन दिव्य प्राकृतिक सौन्दर्यों का आनन्द लेने के पश्चात् यात्री इसी स्थान पर एक प्राकृतिक गुफा में रात्रि विश्राम करते हैं।

तीसरा दिन- अल्यास में रात्रि विश्राम के पश्चात् सुबह होते ही यात्री राशन इत्यादि वहीं पर रखकर सिर्फ पूजा-पाठ की सामग्री और हलवा (प्रसाद) तैयार करने में प्रयुक्त होने वाली सामग्री इत्यादि लेकर अपनी आगे की यात्रा आरम्भ कर देते हैं। प्रभु से मिलन की चाह अपने मन में लिए हुए यात्रियों को पता ही नहीं चल पाता कि वह कब पवित्र झील एवं नीलकंठ महादेव धाम पहुँच गए। वहां पहुँचकर यात्रियों को असीम शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति होती है। झील का स्वच्छ निर्मल जल जो कि बिल्कुल नीला दिखाई पड़ता है इस के एक ओर शिवजी का थान (मन्दिर) अवस्थित है जबकि दूसरी ओर झील के साथ एक विशाल शिलाखण्ड अवस्थित है जो कि शिवलिंग का सा आभास दिलाता है। ध्यान से देखने पर यह शिलाखण्ड भगवान् शिव के गले में सदा विराजमान रहने वाले वासुकीनाग जैसे प्रतीत होते हैं। इस शिलाखण्ड के पीछे एक हिमाच्छादित पर्वत शिखर दिखलाई पड़ता है जो कि पवित्र कैलाश

अल्यास में गद्दी का डेरा

© R.K Telangba

© R.K Telangba

नीलकंठ शिखर

पर्वत का सा आभास दिलाता है। यह वही पर्वत शिखर है जिसके प्रथम दर्शन यात्रियों को अल्यास नामक स्थान से होते हैं। इसके अतिरिक्त इस पवित्र निर्मल नीले रंग के झील में शिलाखण्ड और पर्वत शिखर के दिव्य दर्शन होते हैं अर्थात उनका प्रतिबिम्ब झील के स्वच्छ जल सतह पर स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है। यात्री इस पवित्र झील के किनारे कुछ देर विश्राम करते हैं तत्पश्चात् पवित्र झील की परिक्रमा का समय आता है जिसे कुछ ही यात्री पूरा करते हैं। क्योंकि इस पवित्र झील की परिक्रमा बहुत कठिन एवं जोखिम भरा है। परिक्रमा पूर्ण करने के पश्चात सभी यात्री इस पवित्र गंगा तुल्य झील में स्नान करते हैं तत्पश्चात झील के किनारे अवस्थित शिवजी के मन्दिर में धूप, अगरबत्ती, फूल, फल और प्रसाद इत्यादि के द्वारा प्रभु की पूजा-अर्चना व आराधना करते हैं और सामर्थ्यानुसार भेंट इत्यादि चढ़ाकर प्रभु का गुणगान करते हुए जन्म-जन्म के पापों से मुक्ति की मँगलकामना करते हैं। तदोपरान्त पूजा-पाठ सम्पन्न होने के साथ यात्री प्रसाद इत्यादि आपस में बांटते हैं और पवित्र झील का पवित्र गंगा तुल्य जल अपने-अपने घरों में छिड़कने व रखने के लिए छोटे-छोटे बर्तनों में भरते हैं ताकि घर में दूध की धारा सदा बहती रहे और घर में सुख, शाँति एवं समृद्धि सदा बनी रहे। अब यात्री अपने प्रभु को कोटि-कोटि नमन कर इस पावन पवित्र एवं अलौकिक धाम नीलकंठ महादेव धाम से अपनी वापिसी की यात्रा आरम्भ कर देते हैं और फिर अल्यास गांव नैनगाहर, ग्वाड़ि, छ़ोगज़िङ, च़ोखङ और गांव कमरिङ होते हुए यात्री अपने-अपने गंतव्य स्थानों की ओर खुशी-खुशी प्रस्थान कर जाते हैं। इस प्रकार नीलकंठ महादेव धाम की तीन दिन की पवित्र यात्रा सम्पन्न होती है। ■

इस लेख के प्रायोजक ▶

e-shop

+91 94182 94182
01900 222201
94183 36524
amarjeet166@yahoo.co.in

RECHARGE

BSNL
airtel
dishtv
TATA Sky

MOBILES, TABLETS, CAMERAS, LED & OTHER ELECTRONIC ITEMS

SONY
SAMSUNG
micromax

The Mall, Keylong, Distt Lahaul & Spiti 175132

लाहुल के पूर्व व अब की संस्कृति एवं रीति-रिवाज़

नवङ उपासक

लाहुल में पूर्व में बहुत सारे रीति-रिवाज़ होते थे। उनमें से कुछ रीति-रिवाज़ बहुत अच्छे व कुछ धर्म व सांसारिक रिवाज़ के अनुसार अकुशल थे। पूर्व की बात करें तो लाहुल में सभी लोग अच्छे स्वभाव व अच्छी चर्या के होते थे। धर्म के प्रति समर्पित, आस्थावान, ईमानदार व परिश्रमी थे। आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व तो सभी के घरों के दरवाज़े पर ताला तक नहीं लगते थे। क्यों कि यहाँ किसी प्रकार की चोरी-डकैती नहीं होती थी। यदि कोई आदमी किसी के पास कोई चीज़ अमानत रखता तो वह उसकी पूरी देखभाल करता व उसे सुरक्षित रखता था। अब आज इस बारे किसी पर विश्वास नहीं किया जाता।

अतीत में खेती बाड़ी के कामों के दौरान लोग आपस में समूह बना कर खेतीबाड़ी करते थे। सभी कामों में एक दूसरे का सहयोग करने की परम्परा थी। उन दिनों मज़दूरों से काम नहीं कराया जाता था। पूर्व में किसी भी गाँव में पाँच-छह टोलों का परिवार आपस में एकत्रित होकर सभी काम करते थे। उनके बीच में खून का रिश्ता होता है। जिसे हम फसपुन फसलमा (पितृ-देव) कहते हैं। वे पाँच-छह टोल (परिवार) सुख-दुःख में हमेशा एक दूसरे का सहयोग कर अच्छा रस्म निभाते थे। पूर्व की बात करें तो किसी घर में किसी लड़के की शादी हो जाए जो उनके माँ-बाप घर के सभी काम-काज, खेती-बाड़ी व घर के सभी ज़िम्मेवारी अपने बेटे-बहू को दे कर स्वयं आराम से बैठकर धार्मिक गतिविधि व तीर्थ आदि जाने व सुबह-शाम घर में दैनिक धर्म चर्चा करने की प्रथा थी। बेटे-बहू भी अपने माँ-बाप के प्रति पूरी सेवा भावना रखते थे। माँ-बाप का भी उनपर पूरा आशीर्वाद होता था। आज अब इस के बिल्कुल विपरीत स्थिति है। हर घर में बहू-बेटे घर के सदस्यों से लड़ झगड़ कर सभी से अलग बैठने की कुप्रथा शुरू हो गई है। इस से माँ-बाप को मरते दम तक घर के कामों से तकलीफ व दुःख मिलता है। साथ ही एक ही बाप के बेटे आपस में लड़-झगड़ के घर की पैतृक संपत्ति को टुकड़े-टुकड़े में बाँट लेते हैं।

पहले लाहुल में लकड़ी, दूध, लस्सी, लुगड़ी व फल सब्ज़ी को बेच कर पैसे लेने की परम्परा नहीं थी। ये चीज़ें आपस में खुशी-खुशी आदान-प्रदान करने की प्रथा थी। लाहुली समाज में खाने-पीने के सामान, प्याला-थाली, बिछौना, बिस्तर, पहनावा आदि को कोई भी उसके ऊपर लांघ कर न जाने की एक अच्छी प्रथा थी। उपरोक्त चीज़ों को कोई आदमी चलते वक्त लांघ कर जाता तो उसे असभ्य मानते थे। बैठक व भरी सभा से यदि कोई व्यक्ति उठ कर जाता तो सभी जनता के पीठ के पीछे से जाने की प्रथा थी। कोई भी व्यक्ति उस बैठक से लोगों के आगे से व बिछौना व सोलतक आदि को लांघ कर जाते तो उसे असभ्य मानते थे। लेकिन आज ऐसा नहीं है। ऐसा क्यों होता है? यह हमारे माँ-बाप की गलती है। वे अपने बच्चों को अंग्रज़ी स्कूलों में शिक्षा लेने भेजते हैं वहाँ वे पश्चिमी देशों की सभ्यता को सीखते हैं। बच्चे को सबसे पहले माँ-बाप ही अपनी संस्कृति व सभ्यता सिखा सकते हैं।

पूर्व में किसी व्यक्ति को रास्ते में चलते समय कोई लिखा हुआ कागज़ का टुकड़ा, कपड़ा (दरचोग) व कोई अक्षर लिखा हुआ कागज का टुकड़ा मिलता तो उसका आदर कर सिर पर छूकर साफ सुथरे जगह पर रखते थे। गुरुजन, लामागण व सभी बुज़ुर्गों का बहुत आदर सत्कार होता था। किसी भी बैठक व अन्य स्थानों में सर्वोपरि लामा-भिक्षुओं को ही विराजमान कर उसके बाद उम्र के हिसाब से क्रम में बैठने की अच्छी प्रथा थी। जन साधारण भी अपने घरों में पूजा पाठ व अर्चना करने में सदा प्रयासरत रहते थे। उन दिनों गर्मियों में लामाओं को घर में बुला कर हर घर में पूजा पाठ कराया जाता था। खेती-बाड़ी से जब भी सर्वप्रथम नई फसल आती तो उसे अपने पैतृक-देव (फसल्वा) की पूजा कर तत्पश्चात् दूसरे पूजा करते थे।

सर्दियों के दिनों में सभी घरों में लामाओं को बुला कर पूजा पाठ व बौद्ध ग्रंथों का पाठन किया जाता था। हर घर में लहसंग व कंगसोल पूजा पाठ करने की परम्परा थी।

यदि कोई श्रद्धालु गोम्पा दर्शनार्थ जाता तो खाली हाथ बिलकुल नहीं जाता था। वह अपने साथ भेंट स्वरूप एक कपड़ा (खतग) दीया के लिए घी व अगरबत्ती ज़रूर ले जाता था। लाहुली लोग पाप के कामों से खुद को हमेशा दूर रखते थे। लाहुली समाज में कोई व्यक्ति भेड़-बकरी का वध कर उसका मांस बेचता तो उस व्यक्ति को बहुत नीच व पापी मानते थे। पूर्व में लाहुली समाज में मुर्गा व मछली के मांस को बहुत अशुद्ध मानते थे। इन का तो सेवन न के बराबर होता था। आज स्थिति बिल्कुल अलग है।

पूर्व में कोई भी माँ-बाप अपना पैतृक खेत खलियान, पशु, धन दौलत व घरबार आदि घर के ज्येष्ठ पुत्र को ही देते थे व इसी की परम्परा थी। यह इस लिए किया जाता था कि घर की पैतृक जायदाद का बंटवारा न हो। हर घर में बहुपति प्रथा प्रचलित थी। आज भी ज़िला के उपमंडल काज़ा में घर की पैतृक संपत्ति उस घर के ज्येष्ठ पुत्र को देने की परम्परा है। कहते हैं कि काज़ा में तो यह कानून लागू है कि उस घर की पैतृक संपत्ति ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलेगी। परन्तु लाहुल में घर की पैतृक संपत्ति को एक बाप के सभी बेटों को बराबर मिलने का कानूनी अधिकार है। इस कारण

किसी घर के सभी बेटे अलग-अलग शादी कर अपना-अपना घर बसाते हैं व मां-बाप को बुढ़ापे में अकेले छोड़ दिया जाता है। कोई भी समारोह जैसे शादी-ब्याह, पुत्र उत्पत्ति व अन्त्येष्टि आदि अपने पूर्व के रीति-रिवाज़ के हिसाब के ही किया जाये तो बहुत अच्छा होता। बौद्ध परम्परा के अनुसार कोई मर जाता तो उसे कम से कम चौबीस घंटों तक मुख-अग्नि नहीं दी जाती क्योंकि चौबीस घंटों तक उस मृत शरीर के अंदर के जीव जीवित रहते हैं। आज ऐसा नहीं होता। किसी भी आदमी की मृत्यु हो जाती है तो उसे चन्द घंटों में ही अग्नि को समर्पित किया जाता है। यह बौद्ध परम्परा व लाहुली रीति-रिवाज़ से अलग है।

इस तरह हमें पूर्व के अच्छे संस्कार, रीति-रिवाज़ को यथा सम्भव बरकरार रखने की कोशिश करनी चाहिए। आज हर समाज में अपने पूर्व के संस्कार, रीति-रिवाज़ व त्यौहारों को छोड़ कर दूसरे प्रान्त व पश्चिमी देशों की संस्कृति को अपनाने व नकल करने की परम्परा शुरू की गई है। हमें अपने रीति-रिवाज़ को भूल कर दूसरों की नकल नहीं करनी चाहिए।

यदि लाहुल के गोम्पाओं में होने वाले छम का ज़िक्र करें तो, छम नृत्य एक सांसारिक नृत्य व नाच गान न होकर विशेष पूजा का प्रतीक है। इस दिन छम नृत्य करने वाले सभी लामा-भिक्षु होते हैं। विभिन्न देवी-देवताओं व धर्मपालों के रूप के मुखौटे व पोशाक पहन कर महाकाल षटभुज की पूजा के अनुसार नृत्य करते हैं। इस छम नृत्य को जो भी श्रद्धालु पूर्ण रूप से दर्शन करता है उसके शरीर में साल भर तक कोई भी बाहरी रोग नहीं आता व उसके ग्रह दशा भी दूर होकर उसकी मनोकामना सिद्ध होती है। अतः लाहुल के सभी लोगों को जब भी किसी बौद्ध मठ में छम नृत्य में पहुंचे तो आस्था, लगन से उस छम नृत्य को पूर्ण रूप से दर्शन करना चाहिए।

आजकल के नव युवक छम नृत्य व सांसारिक लोक गाथा के बीच कोई फर्क नहीं समझते। यह हमारी एक बहुत बड़ी भूल है। पूर्व में गोम्पाओं में छम नृत्य की शुरुआत होती तो लोग उसके आगे नतमस्तक होकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे। हमें इस ओर ध्यान देने की अति आवश्यकता है वह यह कि जब भी कोई पश्चिमी देशों की पर्यटक गोम्पाओं के दर्शनार्थ आते हैं तो उनको गोम्पा में विराजमान सभी देवी-देवता, धर्म-पाल, भित्तिचित्र, गोम्पा के पूजा पाठ व इतिहास के बारे में बिल्कुल सही-सही बताने की परम्परा शुरू करनी चाहिए। ताकि भविष्य में कोई गोम्पा के बारे कोई लेख लिखे तो उसमें कोई त्रुटि न हो। कई लेखकों ने गोम्पा में होने वाले छम नृत्य को अंग्रेज़ी में अनुवाद कर उसे (DEVIL DANCE) भूत नृत्य का नाम दिया है। यह एक बहुत बड़ी भूल है। हमें इसे सुधारना चाहिए। ■

महासचिव,
लाहुल बौद्ध महासभा, केलङ।

इस लेख के प्रायोजक ▶

digital EXPRESS
designers & printers
Near Police Station, Mall Rd. Manali

Creative Solutions for your Business

Business Cards
Invitation Cards
Menu Cards
Brochures
Magazines
Calendars
Web Designing & Hosting

For
complete print solutions
Call :

97366 43806

Full HD Video &
Still Photography

शरीर, मस्तिष्क और उत्साह से चूर

डॉ. राजेश कुमार

बुजुर्गों पर अत्याचारों की दर में 50 प्रतिशत की वृद्धि, जोकि पिछले वर्ष की तुलना में दोगुना है
-हेल्प ऐज इण्डिया की एक रिपोर्ट

आज भारत में एक करोड़ (100 मिलियन) बुजुर्ग हैं। वर्ष 2050 तक यह आंकड़ा 3 करोड़ 24 लाख (324 मिलियन) तक पहुंचने की संभावना है, जो कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत है। तेज़ गति से इस वृद्धि दर के कारण पारिवारिक ढांचे तथा सामाजिक रवैये में भी परिवर्तन आ रहा है।

'हेल्प ऐज इण्डिया' ने पिछले 3 वर्षों के दौरान देश भर में बुजुर्गों पर हो रहे अत्याचारों पर शोध किया है ताकि परिवार में बुजुर्गों के सुख के बारे में बढ़ती चिंता को उजागर किया जा सके, जिन्होंने अपने परिवार का परंपरागत ढंग से संरक्षण किया और उसकी देखभाल में अपनी अहम भूमिका निभाई है। अत्याचारों के यह मामले संगठन के अनुभवों से भी सामने आए हैं जोकि देशभर में कार्य कर रही इसकी हेल्पलाइनों के माध्यम से अकेलेपन, परित्यक्त और हिंसात्मक मामलों के बारे में सूचनाएं प्राप्त हुई हैं।

बुजुर्गों के प्रति अत्याचार भारत में नहीं अपितु पाश्चात्य जगत में व्याप्त है और यह एक महानगरीय समस्या है छोटे कस्बों की नहीं, और न ही शिक्षित मध्यवर्गीय समाज में यह पाई जाती है आदि सभी सामान्य मान्यताएं गलत सिद्ध हो चुकी हैं। बहुत ही सामान्य अवधारणा कि 'वृद्धावस्था में बेटा मुख्य रूप से देखभाल करेगा' पूर्णतः ध्वस्त हो गई है। आज के परिवेश में बेटा बहू दोनों मिलकर बुजुर्गों पर अत्याचार कर रहे हैं, इस प्रकार की घटनाओं में वृद्धि हुई है। हैरानी की बात है कि एक तथ्य यह भी उभर कर आ रहा है कि बेटियां भी अपने माता-पिता के प्रति अत्याचारों में संलिप्त हो रही हैं। बुजुर्गों के इस उत्पीड़न के मामले में पिछले वर्ष से 28 प्रतिशत से 50 प्रतिशत तक बढ़ौतरी हुई है। सबसे अधिक विचलित करने वाली बात यह थी कि अत्याचार करने वालों में सबसे अधिक परिवार के भरोसेमंद व्यक्ति थे। अपराधकर्ताओं में अधिकतर बहुएं (61 प्रतिशत) तथा बेटे (59 प्रतिशत) पाए गए। पिछले वर्षों का प्रचलन जारी पाया गया। हैरानी की बात नहीं है, जिन 70 प्रतिशत बुजुर्गों का सर्वेक्षण किया गया वे अपने परिवारों में रहते थे। एक ऐसा तथ्य भी सामने आया जिसके बारे में पहले कभी सोचा भी नहीं गया था कि अब शीर्ष तीन अपराधियों में बेटी भी सम्मिलित पायी जाती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रताड़ना देने वाले का पीड़ित के ऊपर आर्थिक निर्भर रहना भी इस समस्या का एक प्रमुख कारण है।

हालांकि आज भी पांच में से एक बुजुर्ग वर्तमान में उपलब्ध सुधारवादी मशीनरी से अनभिज्ञ है। भारतीय समाज के परम्परागत आदर्श और मूल्य बुजुर्गों की देखभाल के प्रति भरपूर बल देते थे। परंतु टूटती संयुक्त परिवार व्यवस्था के कारण अधिकतर बुजुर्ग अपने परिवार के सदस्यों की परवरिश से महरूम रह जाते हैं। उन्हें अपनी जीवन की सांझ के वर्ष अकेलेपन में गुज़ारने पड़ते हैं। साथ ही उनकी भावनाओं की कोई कदर नहीं होती और न ही उन्हें कहीं से कोई आर्थिक मदद मिलती है। इन सामाजिक चुनौतियों से लड़ने के लिए आवश्यक है कि हम बुजुर्गों की देखभाल तथा उनकी रक्षा के लिए अधिक ध्यान दें। यद्यपि दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 में विहित है कि मां-बाप अपने बच्चों से अपनी परवरिश के लिए दावा कर सकते हैं मगर यह प्रक्रिया बहुत सुस्त और मंहगी है। इसलिए एक सरल, सस्ती और त्वरित व्यवस्था की आवश्यकता है जिसके तहत माता-पिता अपनी परवरिश के लिए दावा कर सकें।

परवरिश अधिनियम : इस अधिनियम में प्रावधान है कि जो माता-पिता, दादा-दादी अपनी देखभाल करने में असमर्थ हैं, वे अपने बच्चों तथा उन रिश्तेदारों से अपनी परवरिश करने की मांग कर सकते हैं जिनके पास या तो उनकी सम्पत्ति है या फिर वह सम्पत्ति उन्हें विरासत में मिलने वाली है। भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा, देखभाल, एवं उपचार आदि परवरिश के दायरे में आते हैं। परवरिश के तौर पर राज्य सरकार द्वारा जो राशि निर्धारित की गई है ट्रिब्यूनल उसे दिलवाने के आदेश पारित कर सकता है। यह राशि अधिकतम 10,000/-रुपए प्रतिमाह है।

परवरिश के लिए प्रक्रिया : अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत कोई भी बुजुर्ग अथवा माता-पिता ट्रिब्यूनल में परवरिश के लिए याचिका दायर कर सकता है। सामान्यजन की भाषा में उन्हें उन व्यक्तियों का नाम तथा उनका पूरा विवरण देना होता है जिनसे

वे परवरिश की चाहना रखते हैं। यदि उनकी संतान अथवा रिश्तेदार एक से अधिक हों तो ऐसे में वे एक अथवा सभी से उनको आमदन के आधार पर अपनी परवरिश की मांग कर सकते हैं। परवरिश की मांग की यह प्रक्रिया किसी भी संतान अथवा किसी रिश्तेदार के विरुद्ध उस ज़िले में जहां माता-पिता अथवा वरिष्ठ नागरिक रहते हों, अथवा जहां वे अंतिम बार रहे हों अथवा जहां बच्चे/रिश्तेदार रहते हों, कहीं भी अपनाई जा सकती है। यदि कोई आवेदनकर्ता स्वयं आवेदन करने में असमर्थ हो तो कोई दूसरा व्यक्ति, अथवा पंजीकृत स्वंयसेवी संगठन याचिका दायर कर सकता है। ट्रिब्यूनल भी स्थिति के मद्देनज़र स्वयं संज्ञान लेकर कार्यवाही कर सकता है। दायर याचिका पर कार्यवाही करते हुए ट्रिब्यूनल बच्चों को नोटिस जारी करता है, मामले में सुनवाई करता है, प्रमाण जुटाता है तथा परवरिश के आदेश जारी करता है। ट्रिब्यूनल मामले को सुलह के लिए भी भेज सकता है या फिर परवरिश के अंतरिम आदेश भी जारी कर सकता है।

यदि आदेशों के बावजूद बच्चे अथवा रिश्तेदार निर्धारित तिथि के बाद तीन महीनों तक बिना किसी ठोस कारण के परवरिश की राशि नहीं देते हैं तो वे बुजुर्ग पुनः ट्रिब्यूनल में जा सकते हैं। ऐसे में ट्रिब्यूनल दोषियों पर जुर्माना लगा सकता है अथवा बच्चे/रिश्तेदार को एक महीने तक या जब तक राशि का भुगतान नहीं करे (जो भी पहले हो) उस अवधि के लिए कारावास की सजा भी दे सकता है।

जब बुजुर्गों के अपने पास और उनके बच्चों तथा खास रिश्तेदारों के पास परवरिश के पर्याप्त साधन न हों तो राज्य सरकार चरणबद्ध तरीके से पर्याप्त वरिष्ठ नागरिक आश्रम बनाती है। गरीब, उनके परिचित तथा संबंधियों द्वारा परित्यक्त तथा दुत्कारे गए बुजुर्गों के लिए उन आश्रमों का रखरखाव करती है। राज्य सरकार प्रत्येक ज़िले में कम से कम 150 लोगों के आवास के लिए एक वृद्धाश्रम खोलकर कार्य अंजाम देती है।

यदि कोई व्यक्ति जिसे बुजुर्गों की देखभाल एवं रखवाली का ज़िम्मा सौंपा गया हो, वह उस बुजुर्ग को पूर्णतः परित्यक्त मंशा से कहीं छोड़ दे तो इस अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत दोषी व्यक्ति को तीन माह का कारावास अथवा 5000/-रुपए जुर्माने की सज़ा दिये जाने का प्रावधान है। अपराध संज्ञेय होगा तथा मेजिस्ट्रेट मुकद्दमे की सुनवाई करेगा।

इस विषय को अक्सर अनदेखा (गलीचे के नीचे दबा दिया जाता है) किया जाता रहा है। अधिकांश बुजुर्ग चुपचाप इस उत्पीड़न का शिकार होते रहते हैं और परिवार की इज़्ज़त बनी रहे.....बस इसी सोच में इस विषय में किसी से बात भी नहीं करते। क्योंकि बहुत से बुजुर्ग तंग (गाली गलौच) करने वालों के साथ रहते हैं। वे तभी शिकायत करते हैं जब स्थिति हद से गुज़र जाती है, वो भी इस डर के मारे कि कहीं वे हिंसा का शिकार न हो जाएं। इस समस्या का जड़ से समाधान करने की आवश्यकता है। हमारे नैतिक मूल्यों के ह्रास से इस समस्या ने एक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। बच्चे बिगड़ रहे हैं। युवावस्था में प्रवेश से पूर्व उन्हें संवेदशील बनाने की आवश्यकता है। हेल्प ऐज ने एचयूजी (हेल्प युनाईट जेनरेशन्स) यानि 'पीढ़ियों को एकजुट करने में सहायता' नामक एक अभूतपूर्व मुहिम छेड़ी है, जिसका उद्देश्य मात्र इतना ही है। ■

राज्य प्रमुख,
हेल्प ऐज इण्डिया, हिमाचल प्रदेश।

चन्द्रताल की विज्ञापन दरें:

आवरण (रंगीन):

बैक कवर 280x210mm	: रु 15000
भीतर कवर पृष्ठ 1 280x210mm	: रु 12000
भीतर कवर पृष्ठ 2 280x210mm	: रु 10000

अन्य (श्वेत श्याम):

पूर्ण पृष्ठ 210x280mm	: रु 5000
अर्ध पृष्ठ 140x210mm	: रु 3000
चौथाई पृष्ठ 105x140mm	: रु 1000
प्रायोजन	: रु 2500

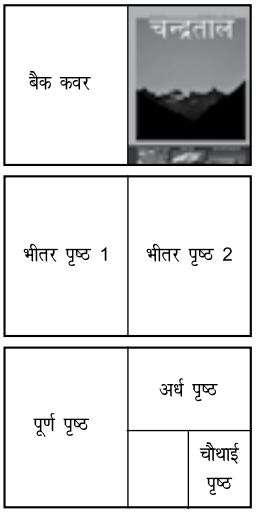

केलंग में मेडिकल अनुसंधान केन्द्र की स्थापना

डॉ. जे.पी. नारायण

यह नया साल लाहुल-स्पीति निवासियों के लिए एक शुभ समाचार के साथ प्रारम्भ हुआ, जब भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई.सी.एम.आर) ने केलंग में ट्राईबल हेल्थ पर एक फील्ड स्टेशन स्थापित करना स्वीकार किया। यह अनुसंधान केन्द्र लाहुल-स्पीति ज़िले में हेल्थ और मेडिकल के क्षेत्र में अनुसंधान करेगा ताकि वहां की स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं को और सशक्त किया जा सके। इस फील्ड स्टेशन का विधिवत् और औपचारिक उद्घाटन जून के अन्त या जुलाई महीने के शुरुआत में केलंग में किया जाएगा और उसके साथ ही काम करना प्रारम्भ हो जाएगा।

इस उपलब्धि के लिए जिन लोगों ने विशेष योगदान दिया है उनमें प्रोफेसर सुरेन्द्र कुमार शर्मा, जो अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (ऐम्स) में मेडिसिन विभाग के हेड हैं और डॉ० विश्वा मोहन कटोच, भूतपूर्व महानिदेशक आई. सी. एम. आर.। श्री रवि ठाकुर विधायक लाहुल-स्पीति और वाईस चेयरमेन नेशनल शेड्यूल्ड ट्राईब्ज़ कमीशन भी इसमें अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

यह केन्द्र जबलपुर स्थित नेशनल रिसर्च इंस्टीच्यूट फॉर ट्राईबल हेल्थ के साथ संबद्ध होगा और आई.सी.एम.आर. के अतिरिक्त कई अन्य इकाइयों या संस्थाओं, जैसे केलंग ज़िला अस्पताल, केन्द्रीय स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण मंत्रालय, ट्राईबल एफेर्ज़ मंत्रालय, हिमाचल स्वास्थ्य विभाग, ऐम्स नई दिल्ली, पी.जी.आई चंडीगढ़, शिमला और टांडा मेडिकल कॉलेजों के साथ मिल कर काम करेगा। आरम्भ में यह फील्ड स्टेशन सर्वे तथा अन्य तरीकों के माध्यम से लाहुल-स्पीति में बिमारियों तथा उनके कारणों और उपचार तथा रोकथाम की सुविधाओं इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करेगा। इन जानकारियों के आधार पर ज़िला स्वास्थ्य परियोजना का प्रारूप तैयार किया जा सकेगा, जिस के कार्यान्वयन से इलाके में स्वास्थ्य का लाभ जानता को मिल पाये।

इस केन्द्र की स्थापना लाहुल-स्पीति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रासंगिक होगी और इसके कई फायदे हो सकते हैं। एक तो इससे अनुसंधान के द्वारा प्राप्त जानकारी से नीतियों और स्वास्थ्य कार्यक्रमों को और अधिक सुदृढ़ करने में बल मिल सकेगा और दूसरे यह उपचार व्यवस्था में भी सुधार लाने में सहायक सिद्ध होगी। जैसे कि लेबोरेटरी होने से कई टेस्ट की सुविधा मिलेगी। टेली मेडिसिन के माध्यम से केलंग के डॉक्टर ऐम्स, पी.जी.आई, शिमला और टांडा के मेडिकल कॉलेजों से सम्पर्क कर उनसे इलाज के बारे में परापर्श कर सकेंगे। इससे खासकर एमरजेंसी केस में बहुत लाभ हो सकता है। इसके अतिरिक्त ऐम्स तथा अन्य अस्पताल गर्मियों में अपना मेडिकल केम्प लगाएंगे ताकि स्थानीय लोगों को विशेषज्ञों की सुविधा मिल पाये। इस प्रकार लाहुल-स्पीति के दूरदराज़ इलाके में बसे निवासियों को भी अच्छी क्वालिटी की स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएं प्राप्त हो सकेंगी।

अभी हाल ही में 29 अप्रैल को इस केन्द्र के विषय में दिल्ली में चर्चा हुई थी और सभी सहयोगी संस्थाओं ने इसमें सहयोग करने की कटिबद्धता ज़ाहिर की तथा एक कॉन्सेन्सस स्टेटमेन्ट' भी जारी किया। इस बैठक में स्थानीय विधायक श्री रवि ठाकुर, नेशनल रिसर्च इन्स्टीट्यूट फार ट्राईबल हेल्प के निदेशक डा० नीरू सिंह तथा ज़िला अस्पताल केलंग के सी.एम.ओ. डॉ० मोहन लाल शाशनी भी शामिल हुए।

केलंग के इस फील्ड स्टेशल की स्थापना की यह नयी पहल एक 'मॉडल स्वस्थ ज़िला' का रूप ले सकता है जिस से अन्य ज़िलों को सीखने का मौका मिलेगा, ऐसा हमारा मानना है। इस फील्ड स्टेशन की स्थापना और इसकी गतिविधियों की निगरानी एक एक्सपर्ट ग्रुप करेगी और इसमें स्टाफ तथा अन्य उपकरण इत्यादि का प्रबन्ध जबलपुर आई.सी.एम.आर. करेगा। जबलपुर से एक टीम 15 मई को केलंग पहुंच गई है और इस केन्द्र की स्थापना का जायज़ा ले चुकी है। ■

चीफ एडवाईज़र,
एन.आई.आर.वी.एच.
फील्ड स्टेशन, केलंग।

इस लेख के प्रायोजक ▼

RAWALSHANGPA CLINIC

Dr. Balbir S. Rawal
MBBS (AIIMS New Delhi)

+91 94184 77043 / 88943 65330
Karpa Complex, opp. Nehru Park, The Mall, Manali

दुःख का नहीं, आनंद का उद्गम है संघर्ष व अभावों का दंश

सीता राम गुप्ता

पिछले दिनों रेल के सफ़र के दौरान एक सहयात्री मिले। जल्दी ही घुलमिल गए। न केवल सज्जन थे बातें भी ढेर सारी कर रहे थे। अपने बारे में अधिकाधिक बतलाने को बेचैन भी प्रतीत हो रहे थे। जब सुनने वाले की ओर से ग्रीन सिग्नल मिल जाए तो फिर सुनाने वाले की ट्रेन जिस रफ़्तार से दौड़ती है इसका अनुमान आप बख़ूबी लगा सकते हैं। सहयात्री जो मित्र बन चुके थे कहने लगे कि उन्होंने जीवन में बहुत संघर्ष किया है। कई भाई-बहनों में सबसे बड़े थे। युवावस्था में ही पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण सारे परिवार का बोझ उनके कंधों पर आ गया। सभी भाई-बहनों को पढ़ाया-लिखाया व उनकी शादियाँ कीं। आज जहाँ एक या दो बच्चों को पढ़ा-लिखाकर उन्हें उनके पैरों पर खड़ा करने में नानी याद आ जाती है वहाँ आठ भाई-बहनों की ज़िम्मेदारी उठाना सचमुच मुश्किल काम है। बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। आदमी कैसे इतना सब कुछ कर पाता है?

वास्तव में संघर्ष जीवन की अनिवार्यता है। यह एक सत्य है। जगदीश गुप्त अपनी कविता ''सच है महज़ संघर्ष ही'' में संघर्ष को जीवन के लिए अनिवार्य मानते हए कहते हैं :

सच हम नहीं सच तुम नहीं।
सच है महज़ संघर्ष ही।
संघर्ष से हटकर जिए तो क्या जिए हम या कि तुम।
जो नत हुआ वह मृत हुआ ज्यों वृंत से झरकर कुसुम।
जो लक्ष्य भूल रुका नहीं।
जो हार देख झुका नहीं।
जिसने प्रणय पाथेय माना जीत उसकी ही रही।
सच हम नहीं सच तुम नहीं।

यदि हम अपने चारों तरफ़ नज़र डालें तो कमोबेश ऐसी ही स्थितियाँ दिखलाई पड़ती हैं। प्रायः सभी को जीवन के किसी न किसी मोड़ पर किसी न किसी तरह के संघर्ष से दो-चार होना ही पड़ता है। किसी के सर से असमय पिता का साया उठ गया तो कोई ममतामयी माँ के स्नेह-स्पर्श से वंचित रह गया। कोई बहनों के बोझ तले दब-सा गया तो किसी की कलाई बहन से राखी बंधवाने को तरस गई। (परिवार नियोजन के चलते आज ये सामान्य बात हो गई है) किसी के जीवन में प्यार का अभाव है तो किसी के जीवन में चिंताओं का अंबार। कहीं दो वक़्त की रोटी के लाले पड़े हैं तो कहीं रोटी होने पर भी उसके स्वाद से वंचित रह जाने की विडंबना। कहीं घर में घर के सदस्यों के बीच सामंजस्य व सौहार्द का अभाव है तो कहीं समाज में जाति-धर्म के नाम पर एक-दूसरे समुदाय के बीच रस्साकशी चल रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि अभाव और संघर्ष जीवन के अपरिहार्य अंग हैं।

जीवन के हर मोड़ पर कोई न कोई विषमता, कोई न कोई अभाव मुँह उठाए ही रहता है। किसी का बचपन संघर्षों में गुज़रता है तो किसी की युवावस्था। कोई अधेड़ावस्था में अभावों से जूझ रहा है तो कोई वृद्धावस्था में एकाकीपन की पीड़ा का दंश भोगने को विवश है। हम सबका जीवन किसी न किसी मोड़ पर कमोबेश असंख्य दूसरे अभावग्रस्त अथवा संघर्षशील लोगों जैसा ही होता है। मेरे ही जीवन में अभावाधिक्य रहा है अथवा मैंने ही जीवन में सर्वाधिक संघर्ष किया है और ऐसी परिस्थितियों में मेरे स्थान पर दूसरा कोई होता तो वो सब नहीं कर सकता था जो मैंने किया यह सोचना ही बेमानी, वास्तविकता से परे व अहंकारपूर्ण है।

कई लोगों का कहना है कि यदि उनके जीवन में ये तथाकथित बाधाएँ अथवा समस्याएँ न आई होतीं तो उनका जीवन कुछ और ही होता। प्रश्न उठता है कि यदि जीवन ऐसा नहीं होता तो फिर कैसा होता? यहाँ एक बात तो स्पष्ट है कि यदि परिस्थितियाँ भिन्न होतीं तो जीवन भिन्न होता लेकिन ऐसा नहीं होता जैसा आज है। लेकिन जैसा आज है क्या वह कम महत्त्वपूर्ण अथवा महत्त्वहीन है? क्या ऐसे जीवन की कोई सार्थकता अथवा उपयोगिता नहीं? क्या संघर्षमयता स्वयं में जीवन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं? इसका उत्तर तो हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

प्रश्न उठता है कि अभाव और संघर्ष हमारे जीवन में क्या स्थान रखते हैं। क्या ये हमारे जीवन को मात्र कष्टप्रद ही बनाते हैं? यदि हमारे जीवन में तथाकथित अभाव व संघर्ष नहीं होते तो क्या हम वैसे ही होते जैसे आज हैं? ऊपरी तौर पर देखने से तो यही लगता है कि अभाव व संघर्ष व्यक्ति को तोड़ देते हैं, उसे कमज़ोर बना देते हैं लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न भी है। ये हमारे अभाव और

संघर्ष ही होते हैं जो हमें कमज़ोर नहीं मज़बूत बनाते हैं। ये हमारे अभाव और संघर्ष ही होते हैं जिनकी वजह से हम जीवन रूपी आँधी में एक दृढ़ चट्टान की तरह अडिग बने रहते हैं। भट्टी की तेज़ आँच में तपकर ही सोना शुद्ध होता है। आदमी भी संघर्षों की तेज़ आँच में तपकर मनुष्य बनता है। उसमें अच्छे गुणों और जीवनोपयोगी कुशलताओं का विकास होता है जिससे उसमें स्वयं उसके लिए ही नहीं अपितु उसके घर-परिवार व समाज तथा राष्ट्र के लिए भी उपयोगिता उत्पन्न हो जाती है।

संघर्षों से जूझनेवाला बहादुर तथा पलायन करने वाला कायर कहलाता है। अभाव और संघर्ष हमारे जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा होते हैं अतः हमारे चरित्र निर्माण अथवा चारित्रिक विकास में बड़े सहायक होते हैं। जो अभावों तथा संघर्षों की आँच में तपकर बड़े होते हैं अथवा निकलते हैं वह उन लोगों के मुकाबले में महान होते हैं जिन्होंने जीवन में कोई संघर्ष किया ही नहीं। अभाव और संघर्ष जीवन की गुणवत्ता को नए आयाम प्रदान करते हैं। संघर्षशील व्यक्ति अपने जीवनकाल में अथवा संघर्ष के बाद के शेष जीवन में बिना किसी भय के अडिग रह सकता है जबकि संघर्षविहीन व्यक्ति बाद के जीवन में अभाव अथवा दुःख के एक हल्के से आघात अथवा झोंके से धराशायी हो सकता है। जिनके जीवन में अभाव अथवा संघर्ष की कमी होती है उन्हें आगे बढ़ने के लिए अथवा स्वयं का विकास करने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है जिसकी उन्हें आदत नहीं होती।

वास्तविकता ये भी है कि अभावों में व्यक्ति जितना संघर्ष करता है सामान्य परिस्थितियों में कभी नहीं करता। अभाव एक तरह से व्यक्ति के उत्थान के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते हैं, उसके विकास की सीढ़ी बन जाते हैं। अभावों से जूझने वाला संघर्षशील व्यक्ति अधिक परिश्रमी ही नहीं अपितु अधिकाधिक सहृदय और संवेदनशील भी होता है। परिस्थितियाँ एक संघर्षशील व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से ऐसे गुण पैदा कर देती हैं। संघर्ष चाहे स्वयं के लिए किया जाए अथवा दूसरों को आगे बढ़ाने व उनके हितों की रक्षा करने के लिए संघर्ष के उपरांत सफलता मिलने पर ख़ुशी होती है। यही ख़ुशी हमारे अच्छे स्वास्थ्य और समृद्धि में सहायक होती है। हमारी ख़ुशी का हमारे स्वास्थ्य से और स्वास्थ्य का हमारी भौतिक उन्नति से सीधा संबंध है। संघर्ष व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है।

सफर में थोड़ी बहुत दुश्वारियाँ न हों तो घर पहुँचकर साफ-सुथरे बिस्तर पर आराम करने का आनंद संभव नहीं। इसी प्रकार अभाव की पूर्ति होने पर जो आनंदानुभूति होती है वह अभाव की अनुभूति के बिना संभव नहीं। अभाव व संघर्ष द्वारा ही यह संभव है। जीवन में आनंद पाना है तो स्वयं को संघर्षों के हवाले कर देना ही श्रेयस्कर है। संघर्ष रूपी कलाकार की छेनी आपके अस्तित्व रूपी पत्थर को तराशकर एक सुंदर प्रतिमा में परिवर्तित करने में जितनी सक्षम होती है अन्य कोई नहीं। मिर्ज़ा 'ग़ालिब' जीवन में विषम परिस्थितियों से उत्पन्न हालात को एक दूरदर्शी व्यक्ति के लिए उस्ताद या गुरु के तमाचे अथवा थप्पड़ की तरह मानते हुए कहते हैं :

अहले-बीनिश को है तूफ़ाने-हवादिस मक्तब,
लत्मा-ए-मौज कम अज़ सीली-ए-उस्ताद नहीं।

हम स्वयं अपने जीवन को रोमांचक, चुनौतीपूर्ण और साहसी बनाने में कोई कसर बाक़ी नहीं रख छोड़ते। ख़तरों के खिलाड़ी कहलवाने में गौरव का अनुभव करते हैं। इससे हमें ख़ुशी मिलती है। लेकिन यदि हमें कोई चुनौती प्राकृतिक रूप से मिल जाती है तो उसे स्वीकार करने अथवा उसके पार जाने में दुविधा क्यों? अभावों तथा संघर्ष को अन्यथा मत लीजिए। उन्हें महत्त्व दीजिए। किसी भी चुनौती को स्वीकार किए बिना उसे जीतना और विजेता बनना असंभव है। संघर्ष हर जीत को संभव बना देता है। संघर्ष दुःख नहीं, दुःख से बाहर आने का प्रयास होता है। दुःख से बाहर आने का अर्थ है सुख, प्रसन्नता अथवा आनंद। संघर्ष आनंद का ही उद्गम है।

ए.डी.-106-सी, पीतमपुरा,
दिल्ली-110034

लेखकों से निवेदन

लेखक बन्धु/भगिनियों से निवेदन है कि आप चन्द्रताल के आगामी अंकों के लिए अपनी अप्रकाशित कविता, कहानी, लेख आदि प्रकाशनार्थ भेज कर हमें अनुगृहीत करें। लेख के साथ अपना तथा लेख के विषय से सम्बन्धित फोटो भी अवश्य भेजने की कृपा करें ताकि पत्रिका के गेटअप को और बेहतर बनाया जा सके। धन्यवाद।

-सम्पादक

स्वाँगला पिति वेणु समागम उर्फ संगीत चक्र प्रवर्तन--

जितना देखा, सुना और याद रख पाया!

जगः छेरिङ

9 मई 2015, गेयटी थियेटर शिमला

'मैं अपने छूटे हुए घर को याद करने के लिए गेयटी थियेटर जा रहा हूँ। आप लोगों में से कौन-कौन आ रहा है?'

8 मई की शाम को फेस बुक पर यह स्टेटस डाल कर मैं चालीस लाहुली कला प्रेमी मित्रों को टैग कर रहा था तो मेरे मन में यह विचार था कि कम से कम चार लोग तो मोटिवेट हो ही जाएंगे। मैं अपने एक अज़ीज़ मित्र के साथ शिमला के लिए रवाना हो गया हूँ। चूँकि सोशल मीडिया पर इस आयोजन का प्रचुर प्रचार है सो हम खासे उत्साहित हैं। वो इस लिए कि घर को याद करने के साथ-साथ एक अभूत पूर्व मित्र-मिलन की उम्मीद भी है! शिमला पहुँचते पहुँचते सभी खासम खास लोगों की असहमतियां असमर्थताएं भी आ गईं हैं। यह निराशाजनक है। जो लोग भाग नहीं ले रहे हैं उन्हें ऑडिएंस के रूप में शिरकत करना चाहिए। एक अच्छा गुणग्राहक कलावंत (Connoisseur) ऑडिएंस ही किसी 'शो' को समृद्ध करता है। इसी तरह सांस्कृतिक विकास के नए आयाम बनते हैं। खैर हमें इन्हीं छोटी-छोटी विवशताओं के बीच अपना संस्कृति कर्म जारी रखना है। आयोजकों ने अपना शेड्यूल डिस्क्लोज़ नहीं किया है। तो उत्सुकता ज़्यादा है। सस्पेंस है, मन रोमांचित है। एडवांस स्टडीज़ के एक कॉन्फ्रेंस हॉल में रिहर्सल चला हुआ है और हम सब खूब नॉस्टेलजिक हो रहे हैं। बाँसुरी, ञिशाःण, प्यङ और कोक्पो की ध्वनियाँ सुन कर लाहुल-स्पीति का पूरा भूगोल और जनजीवन स्मृतियों में झलक झलक गया है। आगामी दिन एक अभूतपूर्व 'स्पेक्टेक्युलर' का दिन होगा इस आशा में हम अपने एक मित्र के घर में सोए हैं। कार्यक्रम के आरंभिक सम्भाषण में चन्द्र मोहन परशीरा ने कहा है कि ऐसा आयोजन न इतिहास में पहले कभी हुआ है न आगे कोई सम्भावना दिखती है। रोज़ी शर्मा के भोटी भाषा में मंगलाचरण के साथ विधिवत 'शो' का आगाज़ हुआ है। मंच संचालन का काम शकुन कर रहीं हैं। उन्हें हम प्रख्यात लोक गायक के रूप में जानते थे। इस नए टेलेंट का पहली बार पता चला। मोनिषा शर्मा नाम की युवती उन्हें असिस्ट कर रही हैं। उन का हिंदी अंग्रेज़ी उच्चारण त्रुटिहीन है। स्वरों में आत्मविश्वास और निखरा हुआ एक्सेंट। सधा हुआ डिक्शन। मोनिषा एक पर्फेक्ट उद्घोषक हैं। लायुल सुर संगम ने अपने लोक नृत्य में आभूषण एवं वेश भूषा में खूब मेहनत कर रखी है। नृत्य भी अच्छा है। संगीत ठीक से सिंक्रोनाईज़ नहीं हो रहा है। बाँसुरी की टोन कुछ ज़्यादा तीखी सुनाई देती है। इस का कुछ करना चाहिए। समूह नृत्य में वोकल यदि एकल की बजाय कोरस में हो तो अच्छा इम्पेक्ट रहता है। देवी चंद, शिवलाल, सोन्टू राम, प्रेम सिंह और शामलाल ने बाँसुरी और ञिशाःण पर पारम्परिक आनुष्ठानिक धुनें बजाईं हैं। यह एक बिल्कुल नया अनुभव था। पहला प्रौहात बहुत मिठास लिए है। आगे जा कर उस माधुर्य का निर्वाह नहीं हुआ है। फिनिश ठीक से नहीं हो पाता है। दर्शकों को इसे ग्रहण करने में दिक्कत आ रही है। वे लोग त्वरित प्रतिक्रियाएं दे रहे हैं। जिस से श्रवण में और भी व्यवधान आया है। लाहुली ऑडिएंस की एक कमी है जब कोई अद्भुत चीज़ सुनते हैं तो उस का स्वाद लेना छोड़ उस पर डिस्कशन करना शुरू कर देंगे.... और सारा मज़ा किरकिरा। शायद इन ठेठ रागों का स्वाद लेने के लिए अपने कानों को हमें खूब अभ्यस्त करना होगा ।

अंकिता साहनी लाहुल की प्रथम ज्ञात महिला बाँसुरी वादक हैं। इन्होंने लाहुल की लोकप्रिय पारम्परिक धुन बजाई है ''बकुरु त बनि करि''। और राग पर आधारित एक शास्त्रीय कम्पोज़िशन भी। पता चला है कि असंख्य युवा बाँसुरी को विधिवत सीख रहे हैं। इस युनिवर्सल आदिम वाद्य का 'लोक' भी सीखा जा रहा है और 'शास्त्र' भी। यह बहुत महत्वपूर्ण है। बाँसुरी वादक युवाओं की एक फौज तैयार हो रही है। ज़रूरत है तो बस नियमित रियाज़ की। अक्षय बोक्टपा और सुनील वर्मा ने बड़ी संलग्नता के साथ बाँसुरी पर खासे जटिल कम्पोज़िशन बजाए हैं। और पूरी तारतम्यता के साथ उन्हें प्रॉपर फिनिश दी है। समीर हाँस ने जिस 'फील' के साथ 'पेषा ग्वातईं ए सादीरे' गाया और बाँसुरी पर उसे बजाया वह अविस्मरणीय है। प्रेम सिंह ने घुरे गाया है। इन की आवाज़ में स्व. ठाकुर दास की शैली का असर सुनाई दिया है। आँखें नम हो रही हैं। इन्होंने अपनी बेटी सुशीला के साथ जो मेलिंग गाँव का घुरे गाया वह एक नया प्रयोग है अतः चित्ताकर्षक है। और देवी चंद का गायन-- 'बोला चनाणी न लगी हो' बेहद भावपूर्ण है। कला अपनी पराकाष्ठा को छूती मालूम हुई है! असल में घुरे का एकल गायन में पूरा मज़ा नहीं लिया जा सकता। पारम्परिक 'लन' शैली में सामूहिक गायन का प्रभाव अलग ही होता है। शकुन ने मार्मिक सुगिलि गाया है - 'बणा बुटे रि आगा लोको दुनिया हेरि'। लेकिन शायद इस आईटम की प्लेसमेंट भी ठीक नहीं हुई हो। दर्शकों ने खास ध्यान नहीं दिया है इस पर। श्रोता उस मूड में प्रवेश नहीं कर पाए हैं। पृष्ठ भूमि में बजती बाँसुरी ज़रा लाऊड है और मुख्य गायन को डिस्ट्रेक्ट कर रही है उस की आंतरिक लय में खलल पड़ रहा है। ये समस्या ओवर आल प्रस्तुति में है। हमें साऊंड इंजीनीयरिंग सीखनी है या फिर श्रोताओं को बहुत अभ्यास की ज़रूरत है। मैंने केवल खुले खेतों और घासनियों में श्रमरत महिलाओं को ही सुगिलि गाते सुना है। संभव है मैं वही इफेक्ट सुनने के लिए कंडीशंड हो गया होऊँ!

राम देव और सतीश लोप्पा ने लोक नृत्य की कुछ मशहूर धुने बाँसुरी पर जुगलबंदी में बजाईं हैं। ञिशाःण पर विवेक व्यङफा खूबसूरत संगत कर रहा है। तीनों की लाजबाव केमिस्ट्री बन रही है। दर्शक आल्हादित हो रहे हैं। सीट से उठ कर नाचने का मन हो रहा है। एल.एस.एस.ए. शिमला के छात्रों ने जो लोक नृत्य प्रस्तुत किया है उस में 'पोउन' वाद्य की गूँज बिल्कुल सही तरीके से रजिस्टर हो पा रही है। यह मज़ेदार लग रहा है। लाहुली लोक नृत्य में अक्सर लास्य छूटता-टूटता नज़र आता है। खास कर के पटन क्षेत्र में। इस पर हमें विचार करना चाहिए। स्पीति के सोनम छोपेल (कोक्पो, प्यङ) और डोलमा बुटिथ (वोकल) सिद्धस्त संगीत कलाकार हैं। परम्परा को उन्होंने सीधे अपने बुर्जुगों से ग्रहण किया है। दोनों अपने अपने काम में माहिर हैं। दफ, दमम और सुरनाई जैसे वाद्यों की कमी खल रही है, लेकिन फिर भी स्पीति की इतनी उपस्थिति काफी है। सेवा निवृत्त पुलिस अफसर प्रेम कटोच ने ञिशाःण पर ड्रबला का राग बजाया है। घोषणा हुई है कि देव घेपङ के अनुष्ठान का प्रारंभ ड्रबला के आह्वन से होता है। अंतिम प्रस्तुति में 14 बाँसुरियाँ हैं। सर्व श्री शमशेर शर्मा, सोन्टू राम, शिव लाल, रामदेव, शाम लाल, सुनील वर्मा, सतीश लोप्पा, अक्षय बोक्टपा, समीर हाँस, शंकर देवल, जोगचंद, प्रेम जीत, देव कोड़फा, प्रेम कटोच, विवेक, महिन्द्र, अजय पाल और कुमारी अंकिता। तीन ञिशाःण। साथ में प्यङ और पोउन। यह एक उत्तेजनापूर्ण अनुभव है। और शायद ऐतिहासिक भी। दर्शक कैसे खुद को रोकें? भावविभोर होकर स्टेज पर चढ़ गए हैं। आयोजक प्रफुल्लित हैं और दर्शक मस्त! रुकने का नाम नहीं। गेयटी मेनेजमेंट को विवश हो कर बिजली काटनी पड़ी है। अंतिम दृश्य में सभी कलाकारों के साथ-साथ न्यूरो सर्जन डॉ. आर.सी. ठाकुर और वयोवृद्ध विद्वान छेरिङ दोर्जे को भी सम्मानित किया जा रहा है। मुख्यमंत्री वीर भद्र सिंह ने आयोजक 'लला मेमे फाऊँडेशन' को पाँच लाख रु. देने की घोषणा की है। बीच में अनेक आईटम मुझ से छूट गए हैं। चाय पानी और भोजन के लिए बाहर जाना पड़ रहा है। सब कुछ देख पाना सम्भव नहीं। पर यह एक बड़ा सांस्कृतिक ईवेंट है। आठवें-नवें दशक में सांस्कृतिक पुनरुत्थान का जो आंदोलन शुरु हुआ था, एल.एस.एस.ए. की सेंट्रल वर्किंग कमेटी का गठन, यूथ फेस्टिवल्ज़, 'स्वंगला एरतोग' और ऐसी अनेक संस्थाओं की उत्पत्ति ..... यह मेगा ईवेन्ट उस शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। समुचित रिहर्सल न होने के कारण कुछ छोटी मोटी गलतियाँ द्रष्टव्य हैं जिन का ज़िक्र यहाँ अपेक्षित नहीं है। शायद इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य एक 'शो' प्रस्तुत करना न हो कर लाहुल के पारम्परिक एवं आधुनिक कलाकारों को एक मंच पर ला कर उन्हें सम्मानित करना था। और अपने इस उद्देश्य में आयोजक सफल नज़र आते हैं।

'मन देश है - तन परदेस'

शेर सिंह की कविताएँ

प्रस्तुत काव्य संग्रह का शीर्षक ही भीतर की कविताओं की कथा बयाँ कर देता है - संग्रह की वे कविताएँ जो प्रकृति सम्बन्धी हैं उनमें 'नदी और पहाड़' कविता अच्छा प्रभाव डालती है संग्रह में कवि को 'घर' बार-बार बुलाता प्रतीत होता है वापस प्रकृति की ओर लौटने की तीव्र इच्छा के साथ। इच्छाओं की क्या सीमा, प्रवासी-आरोप प्रत्यारोप, कितना अच्छा होता, लिख दिया है नाम तुम्हारा, टीसते मन और 'खुश हुआ वुश' का व्यंग्य अच्छा प्रभाव डालता है। मनुष्य में कमज़ोरियां तो हैं ही, मनुष्य को देवता मान लेना भी ज़्यादती होगी। पर जब हम अपने आदर्शों में कमज़ोरियां देखते हैं तो विचलित हो जाते हैं कवि ने इस द्वन्द्व को बखूबी उभारा है। इसी तरह शोषण की चक्की में पिस रहे आदमी को भूख तकलीफ देती ही है परन्तु संवेदना से देखने वाला समाज या बुद्धिजीवी, कलाकार भी किस तरह परोक्ष रूप से उस 'भूख' को इस्तेमाल कर रहा है उसे भी कवि ने सूक्ष्म दृष्टि से देखा है।

कई कविताओं में कमज़ोर, हताश, निराश क्षणों पर भी कवि बात करता है कवि को लगता है कि कई बार ऐसे में संवेदनशील मनुष्य समाज में स्वयं को 'मिसफिट' पाता है। टूटते मूल्यों की तकलीफ कवि को उदास तो करता ही है साथ-ही अपने समय में आ रहे बदलाव पर भी अपनी दृष्टि रखता हुआ उत्तर तलाशने का प्रयत्न करता है। आदमी किस तरह आदमी पर शंका करता है--- अच्छे से बात करने वाले व्यक्ति पर शक करता है- कि आखिर इस अच्छे व्यवहार के पीछे कहीं कुछ और बात तो नहीं। यह शंका आज किस तरह आदमी को आदमी से दूर कर रही है 'प्रतिदान' के माध्यम से कविता इस स्थिति पर दुःख व्यक्त करता है। संग्रह की कविताओं को दो भागों में बांटा जा सकता है - एक ओर कविता का फॉरमेट है तो दूसरी ओर गज़ल का। कहना न होगा कि गज़ल के रूप में लिखी कविताएं भाव और शिल्प की दोनों दृष्टियों से ज़्यादा अच्छी बन पड़ी हैं। फिर चाहे-'इत्र फुलेल' की पंक्तियाँ - जीवन के समानांतर पटरियों पर दौड़ में/दौड़ते हाँफते कोल्हू का बैल हो गया'' हो या फिर - 'जब भी ज़िक्र हमारा आया होगा'। आँखों से नदी बेआवाज़ बही होगी। दिन तो खामोशी से चलता रहा लेकिन रात ने कितने अनकही कही होंगी।

नौकरी पेशा जीवन में अपने गाँव-घर से दूर अजनबी लोगों के बीच अजनबी माहौल में आदमी बेशक विकास की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते सुख सुविधाओं के अम्बार के आसपास रहता है। पर भीतर जो खालीपन महसूस करता है उसे कोई भौतिक वस्तु नहीं भर सकती - इस मूड की कई कविताएं अपनी उपस्थिति दर्ज कराती हैं। कवि का कहना - ''जब भी बौराने लगते हैं आम/तब-तब मुझे/याद आती है अपने बगीचे के/बादाम आड़ू और खुमानियों के पेड़ों की।''

कवि का मन अपने परिवेश को बहुत करीब से देखता है महज़ देखता भर नहीं, बहुत गहराई से महसूस भी करता है कि जो कुछ आसपास है वो वैसा नहीं जैसा होना चाहिए था। इस 'होने' और 'न होने' के बीच की तकलीफ 'बूढ़ी मछली वाली' में सहज ही देखी जा सकती है।

संग्रह में उन सवालों पर भी कवि बात करता है जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं में गुम होते 'स्व' को बचाए रखने की कोशिश में खुद के लिए 'स्पेस' की तलाश करता है। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि किसी भी कवि के पहले संग्रह में जितना अपेक्षित है वह संग्रह में उपलब्ध है। कवि समाज की वास्तविकता का सामना करते हुए उसे वांछित दिशा में बदलने के प्रति सचेत है अपने समय को सचेत होकर देख रहा है- ऐसे समय में सम्बन्धों के बीच घटित हो रहे संघर्ष को बखूबी समझते हुए समस्या की जड़ तक पहुँचने का प्रयत्न दिखाई देता है।

कुछ कविताएँ क्षणिकाओं के रूप में आ सकती थी जैसे माँ की नियति कविता। कवि की संवेदना बहुत सारे सवालों को लेकर भावों और विचारों के माध्यम से व्यक्त हुई है परन्तु शिल्प पक्ष में कविताएँ थोड़ा और गहराई में जाकर व्यक्त होने की माँग करती दिखती हैं।

डॉ० उरसेम लता
एसो. प्रो. हिन्दी,
रा. म. वि. हरिपुर, कुल्लू।

श्री तोबदन जी की तीन पुस्तकें इस वर्ष (2015) प्रकशित हुई हैं:

नाथ पन्थ इन वेस्टर्न हिमालया

नाथ पन्थ समूचे भारतवर्ष में लम्बे समय तक जीवन के हर कदम पर एक शक्तिशाली धार्मिक शक्ति के रूप में व्याप्त रहा है। इस का विद्वानों, शासकों, धार्मिक नेताओं और अन्य लोगों पर गहरा प्रभाव रहा है। इस का भौगोलिक विस्तार एवं पहुंच अद्वितीय था। यह हिमाचल प्रदेश के बीड़-भंगाल और लाहुल जैसे प्रत्यन्त एवं दुर्गमनीय क्षेत्रों तक भी पहुंचा। यह बौद्ध धर्म के पीछे-पीछे देश की सीमाओं को पार कर के तिब्बत तक भी फैल गया था। लेकिन अन्ततः यह शक्तिशाली लहर भी क्षीण हो कर इतिहास का हिस्सा बन गई। उन की कुछेक परम्पराओं का आज भी समाज के सभी वर्गों द्वारा बड़ी श्रद्धा के साथ पालन किया जाता है।

पृष्ठ संख्या 226
मूल्य : 795/-

स्पीति
ए स्टडी इन सोश्यो-कल्चरल ट्रेडिशन्ज़

यह पुस्तक स्पीति के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक पहलुओं को समेटती है। लेखक का दावा है कि उन्होंने स्पीति से सम्बन्धित ऐसे कई उन्य पहलुओं को भी छूने की कोशिश की है जो पूर्ववर्ती विद्वानों के लेखन में अछूते रह गए हैं।

पृष्ठ संख्या 230
मूल्य : 795/-
इन दोनों पुस्तकों के प्रकाशकः
कावेरी बुक्स, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।
Email. kaveribooks@gmail.com
www.kaveribooks.com

ए ग्रामर ऑफ तोदपा
(ए लेंग्वेज ऑफ लाहुल इन द वेस्टर्न हिमालया)

इस पुस्तक में तोदपा भाषा के विभिन्न गुण-लक्षणों का सविस्तार अध्ययन करने का पहली बार प्रयास किया गया है। लेखक ने तोदपा भाषा के विशिष्ट भाषाई लक्षणों के अतिरिक्त भोट लिपि, भाषिक ध्वनियों एवं ध्वन्यात्मक गुणों, समास निर्माण, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया विशेषण, प्रश्न वाचक, समुच्चय बोधक कृदन्त, विस्मयादि बोधक तथा सम्बोधन के भेद आदि विषयों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।

पृष्ठ संख्या 160
मूल्य : 350/-
प्रकाशकः अमृत बुक्स, गुरु अर्जुनदेव नगर, लुधियाना।
Email.amritbooks@gmail.com

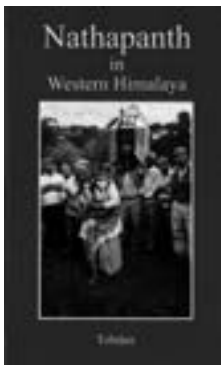

लेखक के बारे :

श्री तोबदन (1944) का सम्बन्ध हिमाचल प्रदेश के लाहुल से है। वे एक स्वाध्यायी विद्वान हैं। उन के अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र लाहुल और उस के अड़ोस-पड़ोस का इतिहास, भाषा, धर्म, सामाजिक प्रथाएं आदि हैं। वे अंग्रेज़ी, हिन्दी और भोटी में लिखते हैं। उन की निम्न पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं -

हिस्ट्री एण्ड रिलीजियन ऑफ लाहुल (1984)
द पीपल ऑफ द अप्पर वेली (द तोदपाज़ ऑफ लाहुल इन हिमालया) (1993)
हिस्टोरिकल डॉक्यूमेंट्स फ्रॉम ट्रांस हिमालया लाहुल, ज़ंस्कर एण्ड लद्दाख (सह लेखक सी. दोर्जे के साथ) (1996)
कुल्लूः ए हिस्टोरिकल स्टडी (2000)
मोरावियन्ज़ इन द ट्रान्स वेस्टर्न हिमालयाज़, सह लेखक सी दोर्ज़े (2008)
बशाहर- किन्नौर : ए स्टडी ऑन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न ट्रान्स हिमालयाज़ (2008)
एक्सप्लोरिंग मलाना (2011), {अंग्रेज़ी में},
भोटी परिचय- व्याकरण और अनुवाद (1990) {हिन्दी में}

सेवा निवृत्ति के बाद पूर्णतः अध्ययन एवं लेखन के प्रति समर्पित।

प्रस्तुति- बलदेव घरसंगी